इकाई 3: इकोयणचि .... अलोऽन्त्यस्य सूत्र तक

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में सवर्ण संज्ञा से लेकर पद संज्ञा तक का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में यण् सन्धि से लेकर अलोऽन्त्यस्य सूत्र तक की उदाहरण सहित व्याख्यायें व प्रयोगों की सिद्धियों का अध्ययन आप करेंगे।

वर्णो के मेल को सन्धि कहते है। इक् के स्थान में यण् होने से यण सन्धि होती है। इक का अर्थ होता है इ, उ, ऋ, लृ और यण का अर्थ होता है य, र, व, ल। सन्धि कहॉ पर होती है और किन परिस्थितियों में सन्धि का विधान किया जाता है इत्यादि तथ्यों का वर्णन इस इकाई में प्रस्तुत है लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण में यण् सन्धि, अयादि सन्धि, गुण सन्धि, वृद्धि सन्धि पर रूप सन्धि, सवर्णदीर्घ सन्धि, पूर्वरूप सन्धि और प्रकृति भाव इन सन्धियों की गणना की गयी हैं।

अतः इस इकाई के अध्ययन से सन्धि प्रक्रिया को समझते हुऐ आप उसकी महत्ता को भी बता सकेंगे, तथा इस इकाई में आये हुए प्रयोगों की सूत्रोल्लेख पूर्वक सिद्धि भी करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- यण् सन्धि की परिभाषा बता सकेंगे।
- सुद्ध्युपास्यः प्रयोग कैसे सिद्ध होगा, इसे समझा सकेंगे।
- मद्ध्वरिः प्रयोग कैसे सिद्ध होगा इसे बता सकेंगे।
- लोप विधायक विधि सूत्र की व्याख्या कर सकेंगे।
- द्वित्व विधायक विधि सूत्र को बता सकेंगे।
- यण:प्रतिषेधो वाच्य: के प्रयोजन को समझा सकेंगे।

3.3 यण् सन्धि विधायक विधि सूत्र

15. इको यणचि 6 । 1 । 77 ।

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये । सुधी उपास्य इति स्थिते ।।

इक् के स्थान में यण् होता है, अच् पर, (बाद) में होने पर जहाँ सन्धि कार्य के विषय हो।

यह सूत्र यण् सन्धि अर्थात् इक् के स्थान में यण् आदेश का विधान करता है। अतः यह यण् आदेश - विधायक विधि सूत्र है। सभी सूत्र सभी स्थानों पर नहीं प्रयोग होते है। उनके कुछ नियम तथा शर्ते होती है। जो उनके नियम तथा शर्तो को पूरा करता है। जैसे- इक् के स्थान में यण् आदेश करने के लिए इको यणचि सूत्र ने, शर्त रखी है कि पूर्व में इक् प्रत्याहार का वर्ण हो, तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो, इक् प्रत्याहार वाले वर्णो के स्थान में यण् प्रत्याहार वाले वर्ण आदेश होगा। इक् प्रत्याहार में ‘‘ इ, उ, ऋ, लृ ’’ ये चार वर्ण आते हैं, और अच्

प्रत्याहार में ''अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ औ '' ये वर्ण आते है, जिसके प्रयोग में अच् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो इक् के स्थान में यण् ''य व र ल'' ये वर्ण आदेश होते हैं। जैसे - सुधी + उपास्य में धी में जो ई है, वह इक् प्रत्याहार में आता है, और उपास्य का जो उकार है वह अच् प्रत्याहार में आता है और वह इक् के बाद में विद्यमान है, इसलिए इक् के स्थान में यण् प्रत्याहार का चारों वर्ण एक साथ प्राप्त हुए। जो भी आदेश होता है वह किसी वर्ण के स्थान पर आदेश होते हैं अर्थात् उसे हटाकर ही होते है। यहाँ ई के स्थान पर ई को हटाकर बैठना चाहते है। यहाँ पर संहिता का विषय भी हैं क्योंकि सुधी + उपास्य में परःसन्निकर्ष: संहिता से संहिता संज्ञा हो चुकी है। धी का ईकार और उपास्य का उकार की अत्यन्त समीपता अर्थात् अत्यन्त सन्निधि है। अतः यह संहिता है। ''शंका'' अब यहाँ शंका होती है कि इक् प्रत्याहार का वर्ण यहां पर तीन है सु में उ, धी में ई, उपास्य में उ। अब किस इक् के स्थान में यण् हो इसको निर्णय करने के लिए अगला सूत्र उपस्थित होता हैं।

नियम कारक परिभाषा सूत्र

16. तस्मिन्निति निर्दष्टे पूर्वस्य 1 । 1 । 66 ॥

सप्तमी निर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम् ॥

अर्थ:- सप्तमी-विभिक्त के द्वारा निर्दिष्ट कार्य व्यवधान रहित पूर्व वर्ण के स्थान पर होता है।

व्यवधान :- दो के बीच में किसी अन्य का होना व्यवधान है।

अव्यवधान :- दो के बीच में किसी अन्य का न होना अव्यवधान है। यह सूत्र व्यवधान न हो ऐसा कहता हैं अर्थात् पर से पूर्व में व्यवधान न होने पर ही कार्य हो, ऐसा नियम बनाता है। जैसे- सुधी ,उपास्यः (स् + उ = सु, ध् + ई = धी, उपास्य) यहाँ पर सु का उकार इक् है और उससे धी का इकार अच् पर में है, इसी तरह धी का इकार इक् है और उससे परे अच् है, उपास्यः का उकार और उपास्यः के उकार को इक् मानकर पर में अच् है पा का आकर। इस दशा में सु के उकार के स्थान पर यण् प्राप्त हो सकते हैं ऐसी परिस्थिति में एक प्रकार का अनियम हुआ, वह यह है कि धी के इकार को अच् परे मानकर सु में उकार के स्थान पर यण् किया जाय अथवा उपास्यः के उकार को अच् मानकर धी के इकार के स्थान पर यण् किया जाय अथवा पा के आकार को अच् पर मानकर उपास्य के उकार के स्थान पर यण् किया, अनियम होने पर नियम करने वाले सूत्र को परिभाषा सूत्र कहते हैं। सभी परिभाषा सूत्र अपनी-अपनी प्रवृत्ति के योग्य स्थलों को देखकर उन-उन विधि सूत्रों में उपस्थित होते हैं।

इस सूत्र ने यह विधान किया कि सप्तमी विभिक्ति के द्वारा निर्दिष्ट जो शब्द या वर्ण उससे व्यवधान रहित पूर्व वर्ण के स्थान पर आदेश आदि कार्य करना चाहिए। अर्थात् पूर्व या पर के बीच में किसी अन्य वर्ण का व्यवधान नहीं होना चाहिए। यण् को विधान करने वाला सूत्र है इको यणचि। उसमें सप्तम्यन्त पद है-अचि। अच् के परे होने पर इक् के स्थान पर यण् होगा। अच् और इक् के बीच में कोई अन्य वर्ण न हो तो, इसलिए यहाँ पर धी में ईकार और उपास्यः के उकार के बीच में किसी अन्य वर्ण का व्यवधान नहीं है। अतः यहाँ पर धी में ईकार के स्थान पर यण् प्राप्त है, सु में जो उकार है उस उकार के स्थान में यण् नहीं होगा क्योंकि पर में अच् नहीं है

और सु के इकार के बाद ध् वर्ण का व्यवधान है। इसलिए उकार के स्थान में यण् नहीं होगा। इसी प्रकार उपास्यः के उकार के स्थान में भी यण् नहीं होगा क्योंकि पर में अच् नहीं है, प् वर्ण का व्यवधान है।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सुधी + उपास्यः में इक् प्रत्याहार का वर्ण मात्र धी में ई एक है और यण् प्रत्याहार (य्, व्, र्, ल्,) का वर्ण चार है। अब ई के स्थान में इन चारों वर्णो में से कौन सा वर्ण हो? इसके लिए अलग सूत्र आ रहा है।

नियम कारक परिभाषा सूत्रः-

17 . स्थानेऽन्तरतमः 1 । 1 । 50 ।।

प्रसंगे सति सदृशतम् आदेशः स्यात् । सुध्य्+उपास्य इति जाते ।।

अर्थ- प्रसंग अर्थात् प्रसक्ति (प्राप्ति) होने पर अत्यन्त सदृश आदेश होता है।

एक के स्थान पर अनेक की प्राप्ति हो तो उनमें से स्थानी का अत्यन्त सदृश होगा और वही स्थानी के स्थान पर आदेश होगा। वर्णो की सदृशता (समानता) न तौल से की जाती है या न आकृति से की जा सकती है। इनकी समानता अर्थ, स्थान, प्रयत्न मात्रा की दृष्टि से देखी जा सकती हैं।

अब यहाँ सुधी में धी में जो ईकार है उसका स्थान है तालु (इचुयशानां -तालु ईकार चवर्ग- च, छ, ज, झ, ´, य और श इन वर्णो का तालु स्थान है पहले संज्ञा प्रकरण में बताया गया है, पुनः आप को स्मरण कराया गया) और यण् में य् का तालु व का दन्त और ओष्ठ, र का मूर्धा, ल् का दन्त है, इसलिए यहाँ पर स्थानी रूपी जो इकार है उसका स्थान है तालु और यण् प्रत्याहार के चारों वर्णो में से य् का भी उच्चारण स्थान तालु है। अतः ईकार तथा यकार दोनों का उच्चारण स्थान एक है। व, र, ल, का उच्चारण स्थान भिन्न है। इसलिए इकार एवं यकार दोनों का उच्चारण स्थान एक होने से धी में ईकार के स्थान में यकार आदेश होकर सुध्य् + उपास्यः ऐसा बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त होता है।

द्वित्व विधायक विधि सूत्र

18. अनचि च 8 । 4 । 47 ।।

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि । इति धकारस्य द्वित्वम्। सुध्ध्य् उपास्य इति जाते ।।

अर्थ :- अच् से परे जो यर् उसका विकल्प से द्वित्व होता है पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण न हो तो। यह सूत्र द्वित्व करता है एक वर्ण को दो कर देता है। यर् प्रत्याहार वाले वर्ण को द्वित्व करता है यर् के पूर्व में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो, किन्तु पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण न हो तो। हल् वर्ण पर हो या न हो। एक पक्ष में कार्य होना एक पक्ष में कार्य न होना उसी को विकल्प कहते है।

सुधी + उपास्यः में धी के ईकार के स्थान पर यण् होकर सुध्य् + उपास्यः जो बना है, उसके बाद अनचि च यह सूत्र लगता है। सुध्य् + उपास्यः में अच् है सु में उकार, उससे परे यर् प्रत्याहार का वर्ण है ध् उस धकार से परे अच् प्रत्याहार का कोई वर्ण नहीं है। क्योंकि यकार अच् प्रत्याहार में नहीं आता है। इसलिए यर् प्रत्याहार का जो वर्ण धकार है उसका विकल्प द्वित्व

होकर सु ध् ध् य् +उपास्यः बना और जिस पक्ष में द्वित्व नहीं होगा उस पक्ष में सु ध् य् + उपास्यः यही रहेगा। प्रत्याहार का ज्ञान करने के लिए आप को संज्ञा प्रकरण में जाना होगा। इसके बाद अगला सूत्र
प्रवृत्त होता है।

जश्त्व विधान करने वाला विधि सूत्र

19. झलां जश् झशि 8 । 4 । 53 ।।

स्पष्टम्। इति पूर्वधकारस्य दकारः ।।

अर्थ- झश् प्रत्याहार के परे रहने पर झलों के स्थान में जश् प्रत्याहार का वर्ण होता है।

इस सूत्र से पूर्व धकार के स्थान पर दकार हो जाता है। इस सूत्र से झल् प्रत्याहार के स्थान पर जश् प्रत्याहार का वर्ण हो जाता है यदि पर में वर्ण के झश् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो। इसी कार्य को जश्त्व कहते है। सु ध् ध् य् $ उपास्यः यहाँ पर झल् प्रत्याहार (झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह) का वर्ण है ध् उसको जश् (ज, ब, ग ड, द,) 'द' हुआ, क्योंकि धकार और दकार का स्थान दन्त (एक) है तथा पर में झश् प्रत्याहार का वर्ण धकार है इसलिए पूर्व धकार के स्थान में दकार होकर सुद्ध्य् $ उपास्यः बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हुआ।

लोप विधायक विधि सूत्र

20. संयोगान्तस्य लोप: 8 । 2 । 23 ।।

संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ।।

अर्थ - संयोगान्त जो पद उसके अन्त का लोप होता है।

हलोऽनन्तराः संयोगः से जिनकी संयोग संज्ञा होती है यदि वह संयोग अन्त में हो ऐसा जो पद (पद संज्ञक शब्द) उसका लोप होता है। इस सूत्र के द्वारा सु द् ध् य् +उपास्यः में अच् से रहित हल् वर्ण द् ध् य् या जिस पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ है सु ध् य् में ध् य् इन सबका एक साथ लोप प्राप्त होता है सु ध् य् में ध् य् इन सबका एक साथ लोप प्राप्त होता है किन्तु इन सबका एक साथ लोप होना ठीक नहीं है। इस प्रकार से जब सम्पूर्ण पद लोप हो जायेगें तो शब्द ही कहाँ बचेंगे। इस अनियम को रोकने के लिए परिभाषा सूत्र उपस्थित होता है।

अन्त्य अल् आदेश परिभाषा सूत्र

21. अलोऽन्त्यस्य 1 । 1 । 52 ।।

षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याल आदेशः स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते - (यणः प्रतिषेधो वाच्यः।) सुद्ध्युपास्यः मद्ध्वरिः (धात्रंशः लाकृतिः)

अर्थः- षष्ठी विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट जिस पद के स्थान पर आदेश प्राप्त हो, वह आदेश अन्त्य अल् वर्ण के स्थान पर होता हैं।

सु द् ध् य् + उपास्यः इस पद में लोप आदेश संयोगान्तस्य लोपः से प्राप्त है। इस सूत्र में षष्ठयन्त पद है संयोगान्तस्य उसके द्वारा निर्दिष्ट पद है सु द् ध् य्। उसके स्थान पर प्राप्त आदेश है लोप। वह अलोऽन्त्यस्य इस सूत्र के नियम से अन्त्य अल् वर्ण सु द् ध् य् में य का लोप प्राप्त है। अर्थात्

सु द् ध् य् में अन्तिम वर्ण य का लोप प्राप्त हुआ।

इस लोप को रोकने के लिए कात्यायन मुनि का वार्तिक यणः प्रतिषेधो वाच्यः आया।

वार्तिक - यण:प्रतिषेधो वाच्यः

अर्थ - यण् के लोप का निषेध कहना चाहिए।

यणः प्रतिषेधो वाच्यः यह वार्तिक कहता है कि जहाँ पर यण् (य् व् र् ल्) कार्य हुआ है। इसके लोप का निषेध कहना चाहिए अर्थात् अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा सूत्र के द्वारा जो सु द् ध् य् उपास्यः में अन्त्य अल् वर्ण यकार का जो लोप प्राप्त है। उसका लोप नहीं होगा। क्योंकि वह यकार सुधी: उपास्यः में धी में जो ईकार है उस ई के स्थान में जो यण् आदेश हुआ है उस यण् के यकार के लोप का निषेध होता है अर्थात् यकार का लोप नहीं होता है। (1) सु द् ध् य् उपास्यः,(2) सु ध् य् + उपास्यः जो रूप बना है वह ज्यों का त्यों रहता हैं। इसके बाद एक संस्कृत में नियम है अच् प्रत्याहार से रहित जो वर्ण है उसको एक में मिला देना चाहिए। (अज्झीनं परेण संयोज्यम्) यहाँ पर अचों से रहित वर्ण है। सु द् ध् य् +उपास्यः, सु ध् य् $ उपास्यः, में द् ध् य्, ध् य् इनको क्रमशः मिला देना चाहिए। यथा द् में ध् मिल गया तो द्ध और य् में उपास्यः का उकार मिलकर यु, द्ध और यु मिलकर द्ध्युपास्यः एवं सु मिलकर सुद्ध्युपास्यः प्रयोग बनता है और जिस पक्ष में धकार को द्वित्व नहीं हुआ है। उस पक्ष में सुध्युपास्यः प्रयोग सिद्ध होता है। संक्षिप्त रूप में सुद्ध्युपास्य रूप की सिद्धि करते हैं।

सुधी + उपास्यः इस स्थिति में तस्मिन्निितिनिर्दिष्टे पूर्वस्यः स्थानेऽन्तरतमः इन दोनों सूत्रों की सहायता से इको यणचि इस सूत्र से धी में जो इकार है उस इकार के स्थान में यकार होकर सु ध् य् + उपास्य बना। इसके बाद अनचि च सूत्र से धकार को विकल्प से द्वित्व होकर सु ध् ध् य् +उपास्यः बना। जिस पक्ष में द्वित्व नहीं होगा, उस पक्ष में झलां जश् झशि, इस सूत्र के द्वारा पूर्व धकार को दकार होकर सु द् ध् य् + उपास्य बना। इसके बाद संयोगान्तस्य लोपः इस सूत्र से पुरे प्रयोग संयोग वर्ण द् ध् य्, ध् य् का लोप प्राप्त होता है। पुनः अलोऽन्त्यस्य इस सूत्र के द्वारा अन्त्य अल् वर्ण यकार का लोप प्राप्त होता है। उस यकार के लोप को बांधकर यणः प्रतिषेधोवाच्यः वार्तिक के द्वारा यकार का लोप का निषेध होकर सु द् ध् य् + उपास्यः ज्यों का त्यों रहा। उसके बाद अज्झीन्नं परेण संयोज्यम् इस नियम के द्वारा वर्ण सम्मेलन होकर सुद्ध्युपास्यः तथा जिस पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ है उस पक्ष में सुध्युपास्यः ये दो रूप बनते हैं।

इक् प्रत्याहार में चार वर्ण है (इ, उ, ऋ, लृ) इकार का उदाहरण सुदध्युपास्यः सुध्युपास्य दिया गया। यण् सन्धि में उकार का उदाहरण देखिये:-

मधु + अरिः यहाँ पर इको यणचि सूत्र से इक प्रत्याहार का वर्ण है। मधु में उकार पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। अरिः में आकार। इसलिए तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य तथा स्थानेऽन्तरमः सूत्र की सहायता से इक् प्रत्याहार का जो वर्ण मधु में जो उकार है उसको यण् अर्थात् वकार होकर म् ध् व् + अरिः बना। क्योंकि उकार तथा वकार दोनों का स्थान एक है। इसके बाद अनचि च सूत्र से धकार को द्वित्व होकर म् ध् ध् व् + अरिः बना। झलां जश् झशि सूत्र से पूर्व धकार के स्थान में दकार होकर म् द् ध् व् + अरिः बना। संयोगान्तरस्य लोपः से संयोगान्त पद द्

ध् व् इन सबका लोप प्राप्त हुआ। इनको बांधकर अलोऽन्त्यस्य सूत्र से अन्त्य अल् वर्ण यकार का लोप प्राप्त होता है। पुनः यकार लोप को बांधकर यण्: प्रतिषेधोवाच्यः इस वार्तिक के द्वारा यकार के लोप का निषेध होकर म द् ध् व् + अरिः ज्यौ का त्यौ बना रहा। उसके बाद अज्झीन्नं परेण संयोज्यम् इस नियम के द्वारा वर्ण सम्मेलन होकर मद्ध्वारिः प्रयोग बनता है और जिस पक्ष में अनचि च सूत्र से द्वित्व होता है, उस पक्ष में मध्वारिः ऐसा प्रयोग सिद्ध होता हैं। मध्वरिः प्रयोग संक्षेपरूप से समझाया गया है। इसका प्रयोग सुद्ध्युपास्यः के समान होता है। केवल मात्र इतना अन्तर होता है कि सुद्ध्युपास्य इकार के स्थान में यकार होता है। मद्ध्वरिः में उकार के स्थान में वकार होता है। इसलिए सुदध्युपास्यः के प्रयोग को समझना अथवा याद करना अत्यन्त आवश्यक है।

इक् प्रत्याहार के चार वर्णो में से इकार उकार का उदाहरण हो गया है आगे ऋकार का उदाहरण देखिये:-

धात्रंश - धातृ + अंशः यहाँ पर स्थानेऽन्तरतमः इस सूत्र की सहायता से इको यणचि इस सूत्र से (धातृ में जो तृ में ऋकार है उस ऋकार के स्थान में र यण् होता है क्योंकि पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है अंशः का अकार) इसलिए ऋ के स्थान में र यण् होकर धा त् र् + अंशः बना। अनचि च सूत्र से तकार को द्वित्व होकर धा त् त् र + अशं बना। यहाँ पर झलां जश् झशि यह सूत्र नहीं लगेगा। क्योंकि झश् प्रत्याहार का वर्ण पर में नहीं है। संयोगान्तस्य लोपः इस सूत्र से त् त् र् इन तीनों वर्णो का लोप प्राप्त हुआ। उसको रोककर अलोऽन्त्यस्य सूत्र से धा त् त् र् का लोप प्राप्त हुआ। पुनः यणः प्रतिषेधो वाच्यः इस वार्तिक के द्वारा र के लोप का निषेध हुआ। धा त् त् र् +अंशः ज्यौ का त्यौ बना रहा। उसके बाद अज्झीनं परेण संयोज्यम् इस नियम के आधार पर वर्ण सम्मेलन होकर धात्त्रंशः सिद्ध होता है और जिस पक्ष में अनचि च से द्वित्व नहीं होगा। उस पक्ष में धात्रंशः प्रयोग बनता है। इस बात का ध्यान देना है कि जिस प्रकार सुद्ध्युपास्यः प्रयोग बनता है। इसी प्रकार धात्रंशः प्रयोग बनता है केवन अन्तर इतना होता है कि वहाँ पर इकार के स्थान में यण् यकार हुआ है। यहाँ पर ऋकार के स्थान में यण् रकार होता है।

लाकृतिः लृ + आकृतिः यहाँ पर तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य तथा स्थानेऽन्तरतम्: इन दोनों सूत्रों कि सहायता से इको यणचि इस सूत्र से (इक प्रत्याहार का वर्ण है लृ पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है, आकृतिः का आकार इस लिए लृ के स्थान में ल् वर्ण होता है क्योंकि लृ और ल् इन दोनों वर्णो का स्थान दन्त (एक) है) लृ के स्थान में ल् होकर ल् +आकृतिः बना। अब यहाँ अनचि च, झलां जश् झशि, संयोगान्तस्य लोपः, अलोऽन्त्यस्य, यणः प्रतिषेधोवाच्यः ये सूत्र नहीं लगेंगे। वर्ण सम्मेलन होकर लाकृतिः प्रयोग सिद्ध होता हैं।

यण् सन्धि कहाँ होती है इसकी विशेष प्रकार की व्याख्या की गयी है। किन्तु सामान्य नियम यह है कि जैसे सुधी + उपास्यः यहाँ पर केवल इतना मात्र बताना है कि इसमें कौनसी सन्धि हुई? इसका उत्तर यह है कि इसमें इको यणचि से यण् सन्धि होकर सु ध् य् + उपास्यः बना तथा वर्ण सम्मेलन होकर सुध्युपास्यः प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ किसी सूत्र की आवश्यकता नहीं हैं। इसी प्रकार जैसे इत्यादि शब्द है। इसका विग्रह है इति + आदि है इक् प्रत्याहार का वर्ण है। इति में

ति में इ पर ये अच् प्रत्याहार का वर्ण है आदि का आकार इसलिए इकार के स्थान में इको यणचि से यण् यकार होकर इ त् य + आदि बनता है।

यदि + अत्र	य द् य् + अत्र	यद्यत्र
गति + इत्यादि	ग त् य् + इत्यादि	गत्यादि
पति + आदि	प त् य् + आदि	पत्यादि
नदि + आदि	न द् य् + आदि	नद्यादि

वर्ण सम्मेलन होकर इत्यादि प्रयोग सिद्ध होता है। अब यहाँ किसी अन्य सूत्र का प्रयोग नहीं करेंगे तब भी काम चल सकता है। इसी प्रकार यण् सन्धि में यकार का अन्य उदाहरण भी दिये जा रहे हैं। यण् सन्धि में यकार का उदाहरण इन शब्दों का आप विग्रह करें:-

यद्यत्र		
गत्यादि	पत्योः	हर्यो
पत्यादि	नद्याम्	इत्याचरति
नद्यादि	यद्यपि	कप्यायात
यद्यत्र	प्रत्येकम्	कप्यानय
मत्यत्र	करोम्यहम्	दध्योदन
कत्यादि	कौमुद्यायाति	अभ्युदय
नद्यत्र	दध्यानय	इत्यपि
गत्यत्र	अस्त्यनुरागः	कव्यपि
सत्यादि	ह्यम्	सत्यपि
मत्यादि	अस्त्यात्मा	नद्यपि

यण् सन्धि में यकार का उदाहरण एवं उनकी सन्धि करें।

कान्ति + आभा
दधि + आदेन
जननि + आह
अभि +उदयः
गति + उदयः
कान्ति + अस्ति
नादि + आवहति
इति + आह
यदि + अयम्
हरि + आगतः

यण् सन्धि में उकार का उदाहरण एवं सामान्य नियम्

मधु + अरिः यहाँ पर इक् प्रत्याहार का वर्ण है पर में मधुः का उकार और अच् प्रत्याहार का वर्ण है पर में अरिः का अकार। इसलिए पर में अच् प्रत्याहार होने के कारण मधु में धु में जो उकार है

उसको इको यणचि सूत्र से उकार को यण् वकार होकर म ध् व् +अरिः बना । अब यहाँ पर तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य तथा स्थानेऽन्तरतमः सूत्र का प्रयोग नहीं करेगे तब भी कोई हानी नहीं है। क्योंकि कहीं भी प्रश्न आता है तो यही प्रश्न आता है कि मध्वरिः में कौन सी सन्धि होगी ? हम उत्तर देते है कि यहाँ पर इको यणचि सूत्र से यण सन्धि हुई है । अन्य कोई सूत्र की आवश्यकता नहीं होती है । उकार का अन्य उदाहरण भी देखिये :-

मनु +आगच्छति यहाँ पर इक् प्रत्याहार का वर्ण है मनु में नु में उकार, पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है आगच्छति का आकार, इसलिए उकार के स्थान में यण् व वर्ण आदेश होता है, क्योंकि दोनों का स्थान एक है म न् व् + आगच्छति बना । वर्ण सम्मेलन होकर मन्वादि प्रयोग सिद्ध होता है। ऐसे ही अन्य उदाहरण सिद्ध किये जाते है । इसी नियम को सामान्य नियम कहते हैं।

उकार का उदाहरण एवं उसका विग्रह करें:- सामान्य नियम कहते है क्योंकि अन्य बाहर कही भी आप परीक्षा देने जाते है तो यही पूछा जाता है कि किस सूत्र से कौनसी सन्धि हुई है। इसलिए व्याख्या के साथ सामान्य ज्ञान कर ले तो भी काम चल सकता है ।

ऋकार का उदाहरण एवं उनका विग्रह करें:-

पित्रागतः	भर्त्रादेशः
मात्रा	मात्रादेशः
भ्रात्रागच्छति	दुहित्रादेशः
मात्राज्ञा	यात्रागतः
पित्रधीनम्	सवित्रागच्छति
पित्रनुरोधम्	धात्रनुरोधम्

यण् सन्धि में ऋकार का उदाहरण एवं उनका विग्रह करें:-

मातृ + आ	भातृ + उक्त
नृ + आत्मज	नृ + आ
पातृ + एतत्	यातृ + आगतः
भातृ + आशाः	यामातृ +आगतः
दुहितृ + ईशः	
धातृ + आदेश:	
मातृ + आदेश:	
भातृ + अनुरोधः	
पितृ + अनुरोधः	
पितृ: अंश:	
मातृ + अर्चा	

यण् सन्धि में लृकार का उदाहरण बहुत कम प्राप्त होता है । लृकार का उदाहरण:-

लाकृतिः	लृ +आकृतिः
लाकरः	लृ + आकरः

लाकरोत्	लृ + आकरोत्

इस प्रकार अच् सन्धि में यण् सन्धि का सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है उसको आप समझें।

सन्धि करें

भू +आदि	भ् + व् + आदि
पु +आदि	प् + व् +आदि
गुरू +आज्ञा	गुर् + व् + आज्ञा
खलु + एहि	खल् + व +एहि
खुल +एतत्	खल् + व् + एतत्
चारू + अग्ङी	चार् + व् +अग्ङी
वधु + आनय	वध् + व् + आनय
कुरू +इदम्	कुर् + व् + इदम्
वृणु + इदम्	श्रृण्+ व् +इदत
मधु + इदम्	मध् + व् + इदम्
वटु+अयम्	वट् + व् +अयम्
वधु + इयम्	वध् + व् + अयम्
विभु +अयम्	विभ् + व् + अयम्

विग्रह करें	**सन्धि**	**आदेश**
	अन् व् +आदेशः	अन्वादेशः
	शिश् व् + अग्ङः	शिश्वग्ङः
	मन् व् + आदेशः	मन्वादेशः
	मध् व् + अक्षत	मध्वक्षतः
	वस्त् व् + अस्ति	वस्त्वस्ति
	वृक्षष् व् + अभिलाषः	वृक्ष्वभिलाषः
	मनव् + आदि	मन्वादि
	देवेष् व् + आसीत्	देवेष्वासीत्
	वस्त् व् + इदम्	वस्विदम्
	शत्र् व् + इत्यादि	शत्रवित्यादि

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि करें**
पितृ +आगतः	पत् र् + आगतः	
मातृ +आ	मात् र् + आ	
भातृ + आगच्छति	भात् र् +आगच्छति	
मातृ +आज्ञा	मात् र् +आज्ञा	
पितृ + अधीनम्	पित् र् +अधीनम्	

पितृ + अनुरोधम्	पित् र् + अनुरोधम्	
भर्तृ + आदेशः	भतर् र् +आदेशः	
दृहितृ + आदेशः	दुहित् र् + आदेशः	
यातृ + आगतः	यात् र् + आगतः	
सवितृ + आगच्छति	सवित् र् +आगच्छति	
धातृ + अनुरोध:	धातर् + अनुरोध	
विग्रह करें	आदेश	**सन्धि करें**
न्र् +आत्मज	न्रात्मज	
पात् र् + एतत्	पात्रेतत्	
भात् र् + आशा	भात्राशा	
दृहित् र् + ईशः	दुहित्रीशः	
धात् र् + आदेशः	धात्राः	
मात् र् + आदेशः	मात्रादेशः	
भ्रात् र् +अनुरोधः	भात्रानुरोधः	
पित् र् + अंशः	पित्रंशः	
मात् र् +अर्चा	मात्रार्चा	
भात् र् + उक्तः	भात्रुक्तः	
नर् + आ	न्रा	
यात् र् + आगतः	यात्रागतः	
यायात् + आगातः	यामात्रागतः	
विग्रह	आदेश	**सन्धि करें**
यदि + अत्र	यद् य् + अत्र	
गति + इत्यादि	गत् य् + इत्यादि	
नदि +आदि	नद् य् + आदि	
यदि +अत्र	यद् य् +अत्र	
मति + अत्र	मत् य् + अत्र	
कति + आदि	कत् य् + अत्र	
नदि + अत्र	नद् य् + अत्र	
गति +अत्र	गत् य् + अत्र	
सति + अत्र	सत् य् + अत्र	
मति +आदि	मत् य् +आदि	
पति + ओः	पत् य् + ओः	
नदी + आम्	नद् य् + आम्	
यदि + अपि	यद् य् + अपि	

प्रति +एकम्	प्रत् य् + एकम्
करोमि +अहम्	करोम् य् +अहम्
कौमुदी + आयति	कौमुद् य् + आयति
दधि + आनय	दध् य् +आनय
अस्ति + अनुरागः	अस्त् य् + अनुरागः
ही +अयम्	ह् य् + अयम्
अस्ति + आत्मा	अस्त् य् + आत्मा
हरि + ओः	हर् य् + ओः
इतिः +आचरति	हर् य् + आचरति
कवि + आयाति	कव् य् + आयाति
कपि + आनय	कप् य् + आनय
दधि +ओदन	दध् य् +आदेन
अभि + उदय	अभ् य् + उदय
इति + अपि	इत् य् + अपि
सति + अपि	सत् य् + अपि
नदी +अपि	नद् य् + अपि

विग्रह करे	आदेश	**सन्धि**
कान्त्य् + आत्मा	कान्त्यात्मा	
जनन् य् + आह	जनन्याह	
गत् य् + उदय	गत्युदय	
कान्त् य् + अस्ति	कान्त्यस्ति	
नद् य् + आवहति	नद्यावहति	
इत् य् + आह	इत्याह	
पद् य् + अयम्	पद्ययम्	
हर य् + आगतः	हर्यागतः	

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
अपि + एतत्	अप य् + एतत्	अप्येतत्
दधि + आशन्	दध् य् + आशन	दध्याशन
अपि + आसीत्	अप् य् + आसीत्	अप्यासीत्
अति + उत्तमः	अत् य् +उत्तमः	अत्युत्तमः
नदी + उत्तमा	नद् य् + उत्तमा	नद्युत्तमा
कामिनी + उदय	कामिन् य् + उदय	कामिन्युदय
जननी + आगच्छति	जनन् य् +आगच्छति	जनन्यागच्छति
पति + अयम्	पत् य् + अयम्	पत्ययम्

मति + अयम्	मत् य् + अयम्	मत्ययम्
कवि + अयम्	कव् य् + अयम्	कव्ययम्
कपि + अयम्	कप् य् + अयम्	कप्ययम्
कान्ति +आभा	कान्त् य् + आभा	कान्त्याभा
हरी +आगच्छतः	हर् य् + आगच्छतः	हर्यागच्छतः
रवि + अयम्	रव् य् +अयम्	रव्ययम्
कपि: एकः	कप् य् + एकः	कप्येकः
नदी + एका	नद् य् + एका	नद्येका
गौरी +एका	गौर् य् + एका	गौर्येका
पार्वती + अपि	पार्वत् य् + अपि	पार्वत्यपि

अभ्यास प्रश्न -

लघु उत्तरीय -

1. सन्धि किसे कहते है।
2. मुख्य रूप से सन्धि कितने प्रकार की होती है।
3. इस इकाई में कितने सन्धियों का वर्णन किया गया है।
4. इक् के स्थान में यण् आदेश किस सूत्र से हुआ है।
5. स्थान का सादृश्य किस सूत्र से देखा जाता है।
6. अनचि च सूत्र किस प्रत्याहार को द्वित्व होता है।
7. झलां जश झशि सूत्र से किसका जश्त्व होता है।
8. यण: प्रतिषेधोवाच्य: इस वार्तिक के द्वारा किस वर्ण वर्ण के लोप का निषेध करता है।

बहु विकल्पीय प्रश्न -

1. यण् प्रत्याहार में कितने वर्ण होते है।

क. पॉच ख. चार ग. तीन घ. दो

2. इक् प्रत्याहार में कितने वर्ण है -

क. छ: ख. सात ग. आठ घ. चार

3.4 सारांश

अच् सन्धि में दो शब्द है- 1- अच् 2- सन्धि। सबसे पहले अच् के बारे में बताया गया है। अच् एक प्रत्याहार है, जिसके अन्दर अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ ये वर्ण आते हैं। जो ह्रस्वं, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त स्वरित, अनुनासिक, अननुनासिक इन सभी भेदों के साथ यहा ग्रहण किये गये है। ऐसे अच् अर्थात् स्वरों की सन्धि की गयी हैं। सन्धि का अर्थ है-जोड़ अर्थात् वर्णो का मेल। वर्ण दो प्रकार के है एक-स्वर तथा दूसरा-व्यंजन। यहाँ स्वर सन्धि के विषय में वर्णन किया गया है। पहले और बाद में अर्थात् आदि तथा अन्त में दोनों वर्ण स्वर (अच्) हो तो वहाँ पर स्वर सन्धि होती है अर्थात् उसे अच् सन्धि कहते हैं। इसी प्रकार जहाँ दो हल वर्णो अर्थात् व्यंजन वर्णो का मेल होता है उसे हल् सन्धि कहते हैं, किन्तु कहीं-कहीं पूर्व में हल वर्ण हो और

पर बने स्वर वर्ण हो तो वहाँ पर भी सन्धियाँ होती हैं। विसर्ग को लेकर होने वाली सन्धि को विसर्ग सन्धि कहते है। इस प्रकार हलों को लेकर होने वाली सन्धि को हल् सन्धि कहते हैं। और अचों की सन्धि को अच् सन्धि कहते हैं। वर्णों के मेल से सन्धि हो जाने के बाद दो शब्दों को प्रायः एक में मिला दिया जाता है अर्थात् दोनों शब्द एक शब्द हो जाते हैं उसको सन्धि कहते हैं।

3.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
सुद्ध्युपास्यः	विद्वानों
गत्यादि	गति आदि
पत्यादि	पति आदि
नद्यादि	नदी आदि
यद्यत्र	जो यहाँ
मत्यत्र	मति यहाँ
कत्यादि	कितना आदि
नद्यत्र	नदी यहाँ है
नद्याम्	नदी में
यद्यपि	जो भी
प्रत्येकम्	प्रति एक
करोम्यहम्	मैं करता हूँ
कौमुद्यायाति	कौमुदी आ रही है
दध्यानय	दधि लाओ
अस्त्यनुराग	अनुराग है
अस्त्यात्मा	आत्मा है
इत्याचरति	ऐसा आचरण करता है।
कव्यायाति	कवि आ रहा है।
दध्योदन	दही और ओदन
इत्यपि	ऐसा भी
कव्यपि	कवि भी
नद्यपि	नदी भी
हर्यागतः	हरि आया
अप्येतत्	यह भी
दध्यासन	दही, आसन
अत्युत्तमः	अत्यन्त उत्तम
नद्युन्तमा	नदी उत्तम

जनन्यागच्छति	माता आ रही है
पत्ययम्	यह पति है।
मत्ययम्	यह बुद्धि है
कव्ययम्	यह कवि है
कप्ययम्	यह बन्दर है
हर्यागच्छतः	दो हरि आ रहे है
रव्ययम्	यह सूर्य है
कप्येकः	एक बन्दर है
नद्येका	एक नदी
गौर्येका	एक गौरी
पार्वत्यति	पार्वती भी
मद्ध्वरिः	मधुनामक दैत्य के शत्रु
धात्रंशः	ब्रह्मा का भाग
लाकृतिः	श्री कृष्ण

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

1. दो वर्णो के मेल को
2. पांच
3. एक
4. इको यणचि
5. स्थानेऽन्तरतमः
6. यर्
7. झल्
8. यण् प्रत्याहार वाले वर्ण को
9. धात्रंश

बहुविकल्पात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)

3.7 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी - डॉ महेश्वर सिंह कुशवाहा
2. सिद्धान्तकौमुदी - डॉ रविनाथ मिश्र

3.8 उपयोगी पुस्तकें

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इको यणचि सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या करें?
2. सुधीउपास्य: प्रयोग की विस्तारपूर्वक सिद्धि कीजिये।
3. धात्रंश: शब्द की सूत्रोल्लेख पूर्वक सिद्धि कीजिये।
4. द्वित्व विधायक विधि सूत्र को उदाहरण सहित परिभाषित कीजिये।

इकाई 4: एचोऽयवायावः सूत्र से .... पूर्वत्राऽसिद्धम् सूत्र तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि सन्धि किसे कहते हैं और यण् आदि सन्धियों के विधान में किन - किन सूत्रों का प्रमुख योगदान है। प्रस्तुत इकाई में अयादि सन्धि और गुण सन्धि आदि के सूत्रों का उल्लेख करते हुए व्याख्या पूर्वक उनसे सम्बद्ध प्रयोगों को आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत किया गया है।

अच् प्रत्याहार का वर्ण यदि एच् प्रत्याहार के बाद आता है तो उसके स्थान में क्रमश: अय्, अव्, आय्, और आव् हो जाते है ऐसा एचोऽयवायाव: सूत्र का नियम है। जिससे हरये , विष्णवे, नायक: , पावक: आदि शब्दों की सिद्धियॉ की जाती है। इसी प्रकार इस इकाई में गुण संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र और गुण संज्ञा करने वाला तथा इत् संज्ञा में प्रयुक्त सूत्रों की परिभाषायें उदाहरण सहित इस इकाई में वर्णित है।

अत: इस इकाई का अध्ययन कर लेने पर आप अच् सन्धि के विभिन्न प्रयोगों की सिद्धि करने में सक्षम हो सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप -

- अयादि सन्धि के विषय में आप भली-भांति परिचित होगें।
- एचोऽयवायवः सूत्र को परिभाषित करेंगे।
- वान्तोयिप्रत्यये सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या करेंगे।
- गुण आदेश सूत्र को उदाहरण सहित बतायेंगे।
- गुण संज्ञा विधायक सूत्र को परिभाषित कर सकेंगे।
- लोपः शाकल्यस्य इस सूत्र के विधान को समझा सकेंगे।

4.3 अयादेश विधायक विधि सूत्र

22 एचोऽयवायावः 6 । 1 । 78 ।।

एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि ।।

अर्थ - अच् प्रत्याहार का वर्ण एच् प्रत्याहार के बाद में हो तो एच् के स्थान में क्रमशः अय् अव्, आय्, आव आदेश होते है।

एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत ए, ओ, ऐ, औ, ये चार वर्ण आते हैं। इनके स्थान में क्रमशः अय् अव् आय् आव् अर्थात् ए = आय्, ओ = अव्, ऐ = आय्, औ = आव् आदेश होते हैं। पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो जैसे - हरये - इसका विग्रह हुआ हरे + ए। यहाँ एच् प्रत्याहार का वर्ण है हरे में र में ए और पर (बाद) में अच् प्रत्याहार का वर्ण है ए केवल ए। ऐसी स्थिति में इस सूत्र

से हरे में र में ए के स्थान पर अय्, अव् आय् और आव् ये चारों आदेश एक साथ प्राप्त हुये अतः इस प्रकार यह अनियम हुआ। इस अनियम को रोकने के लिए अगला सूत्र प्रवृत्त हुआ।

नियम विधायक परिभाषा सूत्र

23. यथासंख्यमनुदेशः समानाम् 1 । 3 । 10 ॥

समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्। हरये। विष्णवे। नायकः पावकः ॥

अर्थ - समान संख्या वाली विधि क्रम से होती है। एचोऽयवायावः सूत्र द्वारा कहा गया अय् अव् आय् आव् यह आदेश रूप जो विधि है वह समान विधि है ? क्योंकि एच् (ए ओ ऐ औ) भी चार है और अय् अव् आय् आव् ये आदेश भी चार है यथासंख्यमनुदेशः समानाम् इस परिभाषा सूत्र के द्वारा यह विधि बारी-2 अर्थात् पहले को पहला ए = अय् दूसरे को दूसरा औ = अव् , तीसरे को तीसरा ऐ = आय् चौथे को चौथा औ = आव् आदेश होगा।

इस प्रकार से हरे + ए में स्थानी रे में ए है और वह पहला है, अतः आदेश में पहला अय् आदेश होगा। र में ए के स्थान पर अय् आदेश होकर हर् + अय् + ए बना। अब यहाँ अच से रहित वर्ण अकेले नहीं बैठते किसी न किसी वर्ण के सहारे की आवश्यकता होती है वे अपने से बाद वाले वर्ण से मिलकर बैठते है । हर् वाला वर्ण र् अलगे वाला वर्ण अय् के अकार से मिलकर हरय् बना। हरय् वाला य् वर्ण अलगे ए से मिलकर हरये प्रयोग सिद्ध होता हैं।

अयादि सन्धि में ओ का उदाहरण

विष्णवे - विष्णो + ए यहाँ पर एच् प्रत्याहार का वर्ण है। विष्णो में ष्णो में ओ और पर में अच् (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ) प्रत्याहार का वर्ण है केवल ए। इस स्थिति में इस सूत्र से विष्णों में णों में ओ के स्थान पर अय् अव् आय आव् ये चारों आदेश एक साथ प्राप्त हो गये। स्थान एक है और आदेश चार है । यह संभव नहीं है इसलिए इस नियम को रोकने के लिए यथा संख्यमनुदेशः समानाम् यह परिभाषा सूत्र नियम बनाता है कि ए= अय्, ओ = अव्, ऐ = आय् और औ के स्थान पर में आव् आदेश होता है। विष्णो + ए यहाँ पर ओ के स्थान में अव् आदेश होकर विष्ण् + अव् + ए बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णवे प्रयोग सिद्ध होता हैं।

इसी प्रकार नायकः पावकः प्रयोग बनते है। अन्तर केवल इतना होता है कि पूरी प्रक्रिया हरये के समान होती है विग्रह और आदेश में भिन्नता होती हैं।

नायकः - नै + अकः यहाँ पर यथा संख्यमनुदेशः समानाम् इस परिभाषा सूत्र की सहायता से एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा नै में जो ऐ है उस ऐ के स्थान में अर्थात् तीसरा स्थान में तीसरा आदेश आय् होता है क्योंकि अच् प्रत्याहार का वर्ण अकः का अकार पर में है। न् + आय् + अकः बना। वर्ण सम्मेलन होकर नायकः प्रयोग सिद्ध होता हैं।

पावक पौ + अकः यहाँ पर यथा संख्यमनुदेशः समानाम् सूत्र की सहायता से एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा पौ में जो औ है। उस औ के स्थान में चौथा स्थानी के स्थान पर चौथा आदेश आव् होता है क्योंकि पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है अकः का अकार।

प् + आव् + अकः बना। हरये के समान वर्ण सम्मेलन होकर पावकः प्रयोग सिद्ध होता हैं।

अयादि सन्धि में इस सूत्र का अन्य उदाहरण विग्रह करें:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
भौ + उकः	भ् + आव् उकः	भावुक
चै +अनम्	च् + अय् +अनम्	चयनम्
गै + अन्	ग् + आय् + अनः	गायनः
पो + अनः	प् + अव् + अनः	पवनः
भो + अति	भ् + अव् + अति	भवति
ने + अति	न् + अय् + अति	नयति
शे + अनम्	श् +अय् + अनम्	शयनम्
असौ + अयम्	अस् + आव् + अयम्	असावयम्
चोरे + अति	चोर् + अय् + अति	चोरयति
लो + अनम्	ल् +अव् + अनम्	लवनम्
बालिके +अत्र	बालिक् + अय् + अत्र	बालिकयत्र
असे + ए	अस् + अय् + ए	असये
पशो + ए	पश् + अव् + ए	पशवे
गुरो +अः	गुर् + अव् + अः	गुरवः
साधो + ए	साध् + अव् + ए	साधवे
चे +अः	च् + अय् + अः	चयः
पो + इत्रम्	प् + अव् + इम्त्र	पवित्रम्
वटा + ऋक्ष	वट् + अव् + ऋक्ष	वटवृक्षः
भो +अनम्	भ् + अव् + अनम्	भवनम्
रवौ + इव	र व् + आव् + इव	रवाविव
वागथौ + इव	वागर्थ + आव् + इव	वागर्थाविव
करौ + एतौ	कर्+आव् + एतौ	करावेतौ
कवे +ए	कव् + अय् + ए	कवये

अवादेश विधायक विधि सूत्र

24 वान्तो यि प्रत्यये 6 । 1 । 79।

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः । गव्यम्। नाव्यम् । (अध्वपरिमाणे च) गव्यूतिः।

अर्थ - यकार हो जिसके आदि में ऐसा प्रत्यय पर (बाद) में हो तो, ओ के स्थान में अव् और औ के स्थान में आव् आदेश होता हैं । इस सूत्र में भी यथा संख्यनुदेशः समानाम् सूत्र की आवश्यकता पड़ती है। इससे स्थानी में प्रथम ओ के स्थान पर प्रथम अव् आदेश होता है और द्वितीय औ के स्थान पर द्वितीय आव् आदेश होता हैं ।

गव्यम् - गो + यम् यहाँ पर यकरादि प्रत्यय पर में यम् का यकार होने के कारण गो में जो ओ है

उस ओ के स्थान पर इस सूत्र से अव् आदेश होकर ग् + अव् + यम् बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर गव्यम् प्रयोग सिद्ध होता है।

नाव्यम् - नौ + यम् यहाँ पर यकरादि प्रत्यय पर में यम् का यकार परे होने के कारण वान्तोयियत्यये इस सूत्र से औ के स्थान पर आव् आदेश होकर न् + आव् + यम् बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर नाव्यम् प्रयोग सिद्ध होता है।

वार्तिक - गो शब्द के बाद 'यूति'' शब्द पर में हो तो गो के ओ के स्थान में अव् आदेश होता है। यदि यूति शब्द का अर्थ मार्गवाची परिभाषा (माप) अर्थ वाचक हो तो।

गव्यूति :- गो + यूति यहाँ पर गो शब्द के बाद यूति शब्द परे होने के कारण गो में जो ओकार है उसको अव् आदेश होकर ग् + अव् + यूति बना। वर्ण सम्मेलन होकर गव्यूतिः प्रयोग सिद्ध होता हैं।

गो + यम्	ग् + अव् +यम्	गव्यम्
नौ + यम्	न् + आव् + यम्	नाव्यम्
गो + यूति	ग्+अव् + यूति	गव्यूति
शंको + यः	शंक् + अव् + यः	शंकव्यः

गुण संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

25. अदेङ् गुणः 1 । 1 । 2 ।।

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात् ।।

अर्थ - हस्व अकार और एड्. ये गुण संज्ञक होते है। अतः अ, ए, ओ, इन तीन वर्णो की गुण संज्ञा होती है।

नियम सूत्रः-

26. तपरस्तत्कालस्य 1 । 1 । 70 ।।

तः परो यस्मात्स च तात्परश्चोच्चार्यमाणः समकालस्यैव संज्ञा स्यात् ।। त् जिसके पर (बाद में) है और त से जो परे है वह जो (अण्) अपने समकाल का ही बोधक होता है। अर्थात् हस्व वर्ण के साथ त पर में हो तो वह मात्र हस्व अकार का बोधक होगा। यदि दीर्घ के साथ त् पर में होगा तो दीर्घ मात्र वर्ण का बोधक होगा। हस्व वर्ण का बोधक नहीं होगा क्योंकि सभी स्वर अपने सवर्णो का ग्रहण कराते है जैसे अ से आ, आ3 अर्थात् दीर्घ प्लुत का भी ग्रहण कराने वाला होता है। किन्तु त पर अर्थात् जिस स्वर के बाद त् पढ़ा गया हो तो वह अपने समयकाल अर्थात् त के पूर्व में जो अ वर्ण है उसी का ज्ञान कराता है जैसे अदेङ् गुणः में अत् और एड. पढ़ा गया है यहां अत् में त पर में है अ केवल एक मात्रिक अकार का बोधक होगा। उसी प्रकार एङ् पढ़ा गया है, यहां अत् में त पर में अ केवल एक मात्रिक अकार का बोधक होगा। उसी प्रकार एङ् (ए ओ) को बोधक होगा अन्य अपने सवर्णो का बोधक नहीं होगा। अब यह निश्चित हो गया कि गुणसंज्ञक वर्ण अ, ए, ओ, तीन ही मात्र होगें। अपने सवर्णो का ग्राहक नहीं होंगे। इस

सूत्र का प्रयोजन क्या है अगले सूत्र में बताया जा रहा है।

गुण संज्ञा विधायक विधि सूत्र

27 .आद्गुणः 6 । 1 । 69 ।।

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात्। उपेन्द्रः। गंडोदकम्।

अर्थ - अवर्ण से अच् परे होने पर पूर्व और पर के स्थान में गुण रूप एक आदेश होता है।

इस सूत्र के लगने के बाद एक शंका उत्पन्न होती है कि पूर्व और पर में दो ही वर्ण होते है और दोनों वर्णो के स्थान पर एक वर्ण आदेश के रूप में होना चाहिए किन्तु गुण संज्ञक वर्ण जो अ ए ओ तीन है, इन तीनों वर्णो की प्राप्ति एक साथ हो रही है। इस अनियम को दूर करने के लिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र की आवश्यकता होती हैं इस सूत्र के द्वारा स्थान साम्यता अर्थात् स्थानी और आदेश को लेकर तुल्यता देखी जाती है। स्थान और आदेश दोनों वर्णो का स्थान एक हो तो उस स्थानी के स्थान पर वह आदेश होता है।

उपेन्द्रः - 'उप' + इन्द्र में आदगुणः सूत्र लगा। अवर्ण है उप में प के बाद वाला अकार और अच् प्रत्याहार का वर्ण है पर में इन्द्र का इ पूर्व में अकार और पर में इकार इन दोनों वर्णों के स्थान पर गुण संज्ञक वर्ण अ, ए, ओ, ये तीनों वर्ण उपस्थित होते है अ और इ इन दोनों के स्थान पर गुण संज्ञक तीनों वर्णो में से किसी एक ही वर्ण होना चाहिए। किन्तु इन तीनों वर्णो में सें कौनसा वर्ण आदेश के रूप में हो? यह निश्चित नहीं हो पाया। इसलिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र की सहायता से उप में प में अ तथा इन्द्र का इ, अ और इ इन दोनों वर्णो के स्थान पर गुण संज्ञक अ, ए, औ तीनों वर्णो में से एक की प्राप्ति होगी। इन तीनों वर्णो में से सबसे सन्निकट वर्ण ए है। ए का स्थान कण्ठ और तालु है और अ का स्थान काण्ठ है तथा इ का स्थान तालु है। इसलिए अ + इ इन दोनों वर्णो का स्थान में ए होकर उप् + अ + न्द्रः, अ + इ = इन दोनों के स्थान में ए हो गया, उप् +ए + न्द्रः बना। अब वर्ण सम्मेलन होकर उपेन्द्रः प्रयोग सिद्ध होता है। जहां भी संसार में अ वर्ण के बाद इ वर्ण होगा वहाँ पर ए अवश्य होगा और उस सन्धि को गुण सन्धि कहते हैं।

गुण सन्धि के तीन वर्ण है अ, ए, ओ, आपने ए का उदाहरण पढ़ लिया अब इसके बाद ओ का उदाहरण दिया जा रहा है।

गंगोदकम् - गंगा + उदकम् यहाँ पर सभी प्रक्रिया उपेन्द्रः के समान होगा अन्तर केवल इतना होगा कि वहाँ पर अ और इ मिलकर ए गुण संज्ञक वर्ण हुआ। यहाँ पर अ और उ मिलकर ओ गुण होता है। यहाँ किस प्रकार होगा इसका ज्ञान करिये।

गंगा + उदकम् यहाँ पर आदुणः सूत्र के द्वारा अवर्ण है। गंगा में आ पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है उदकम् का उ अब गंगा में आकार और उदकम् का उपकार इन दोनों वर्णो के स्थान पर गुण संज्ञक वर्ण तीनों एक साथ प्राप्त हो गया। अब इन तीनों वर्णो में से कौनसा वर्ण होगा। इसको निर्णय करने के लिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र के द्वारा अ + उ का सबसे सन्निकट (समीप) वर्ण होगा, वही उसके स्थान में गुण होगा। यहाँ पर अ का स्थान कण्ठ और उकार का स्थान ओष्ठ है और गुणसंज्ञक वर्ण ओ का ओष्ठ है। यह निश्चित हो गया कि अ + उ के स्थान में ओष्ठ संज्ञक वर्ण ओ होगा। इसलिए गंग् + ओ + दकम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर गंगोदकम् प्रयोग सिद्ध होता है

। अब यह निश्चित हो गया कि संसार में जहां कहीं भी अवर्ण के बाद में उवर्ण होगा तो ओ वर्ण गुण होना है। अब इन का क्रमशः उदाहरण देखें:-

गुण सन्धि में ए का उदाहरण:-

विग्रह	आदेश	सन्धि
उप् + इन्द्र	अ + इ = ए	उपेन्द्रः
गज् +इन्द्र	अ + इ = ए	गजेन्द्रः
रमा + ईशः	आ + ई = ए	रमेशः
उमा + ईशः	आ + ई = ए	उमेशः
राम + इति	आ + इ = ए	रामेति
च + इति	अ + इ = ए	चेति
परम + ईश्वर	अ + ई = ए	परमेश्वरः
देव + इन्द्र	अ + इ = ए	देवेन्द्रः
तव+इह	अ + इ = ए	तवेह
महा + ईशः	आ + ई = ए	महेशः
गण + ईशः	अ + इ = ए	गणेशः
देव + ईशः	अ + ई = ए	देवेशः
अवध + ईशः	अ + ई = ए	अवधेशः
सुर + ईशः	अ + ई = ए	सुरेशः
दिन + ईशः	अ + ई = ए	दिनेशः
भूप + ईशः	अ + इ = ए	भूपेशः
रमा + इति	अ + इ = ए	रमेति
सुर +इन्द्र	अ + इ = ए	सुरेन्द्र
सत्य + इन्द्र	अ + इ = ए	सत्येन्द्र

गुण सन्धि में ओ का उदाहरण:-

विग्रह	आदेश	सन्धि
गंगा + उदकम्	आ + उ = ओ	गंगोदकम्
महा + उत्सवः	आ + उ +ओ	महोत्सवः
हित + उपदेशः	अ +उ = ओ	हितोपदेशः
गुण +उत्तमः	अ + उ = ओ	गुणोत्तमः
सूर्य + उदयः	अ + उ = ओ	सूर्योदयः
यज्ञ + उपवीतम्	अ + उ = ओ	यज्ञोपवितम्
राम + उदक:	अ + उ = ओ	रामोदकः
कृष्ण +उत्सवः	अ + उ = ओ	कृष्णोत्सवः
गन्ध + उदक	अ + उ = ओ	गन्धोदकम्

फल + उदक	अ + उ = ओ	फलोदकम्
मनुष्य + उत्तम	अ + उ = ओ	मनुष्योत्तम्
बालक + उत्तम्	अ + उ = ओ	बालकोत्तम्
परम: + उत्कृष्टम्	अ + उ = ओ	परमोत्कृष्टम्

इस प्रकार गुण सन्धि में एकार तथा ओकार का उदाहरण दिया गया। इसके बाद ऋकार का उदाहरण दिया जायेगा।

इत्संज्ञा विधायक ,संज्ञा सूत्र

28 उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1 । 3 । 2 ।।उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात् । प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणों रेफो रलयोः संज्ञा।।

अर्थ - जो अच् उपदेश अवस्था में अनुनासिक हो, उसकी इत्संज्ञा होती है।

पाणिनि के वर्ण प्रतिज्ञा अर्थात् गुरू परम्परा के उपदेश से अनुनासिक धर्म वाले है। लण् सूत्र स्थित लकार में स्थित अवर्ण के साथ मिला हुआ रेफ र और ल वर्णो का बोध कराता है । उपदेशेऽजनुनासिक इत् यह सूत्र अनुनासिक अच् की अपेक्षा करता है। अनुनासिक कहीं स्पष्ट रूप से प्रतीत होते है और कहीं उनको अनुनासिक मान लिया जाता हैं।

हल् वर्णो में ड् ′ ण् न् म् ये हमेशा अनुनासिक है । य् व् ल् ये तीनों वर्ण एक पक्ष में अनुनासिक होते है और एक पक्ष में अननुनासिक होते है अर्थात् अनुनासिक नहीं होते हैं । और य् व् ल् इन को छोड़कर शेष व्यंजन वर्ण अनुनासिक होते ही नहीं है किन्तु स्वर सारे अनुनासिक और अननुनासिक दोनों होते हैं। यह संज्ञा प्रकरण में कहा गया है। पाणिनि जी ने कहीं अचों को अनुनासिक माना है और कहीं अनुनासिक नहीं माना है जैसे भू सत्तायाम् धातु है इन को उपदेश में पढ़ा गया है। उपदेश में भू में जो अच् है यहां उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा नहीं होती है क्यौकिं उपदेश में अच् होते हुए उकार की इत्संज्ञा नहीं होती है। इसलिए कि यहाँ पर जो अच् है वह अनुनासिक नहीं माना गया है। अन्य जगह उपदेश अवस्था में अच् को अनुनासिक माना गया। जैसे - एध वृद्धौ धातु है यहां पर स्पष्ट प्रतीत न होते हुए भी पाणिनि ने धकार में जो अकार है उसको अनुनासिक माना । अनुनासिक होने से उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा हुई तथा तस्य लोपः से लोप भी हुआ । इसका फल आगे स्वादि प्रकरण में बताया गया है। छात्र को पढ़ते पढ़ते पता चल जाता है कि कौन स्वर वर्ण अनुनासिक है और कौन स्वर वर्ण अनुनासिक नहीं हैं ।

प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः - कहा गया है कि पाणिनि ने जिन वर्णो को अनुनासिक माना है वहीं वर्ण अनुनासिक है। जिस प्रकार आप ने भू तथा एध् में देखा ।

माहेश्वर चौदह सूत्रों में छठा सूत्र लण् है और लण् के मध्य (ल् अ ण्) में जो अकार है वह अनुनासिक माना गया है। इस प्रकार की इत्संज्ञा करने के लिए उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा होती है क्यौकि गुरू परम्परा से लण् मध्ये त्वित्-संज्ञक यह संज्ञा प्रकरण में पहले कहा गया है । लण् सूत्र के मध्य में जो अकार है वह अनुनासिक है । लण् में जो अकार है उसको

अनुनासिक मानकर उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र में इत्संज्ञा की गयी है उसका मुख्य प्रयोजन र् प्रत्याहार की सिद्धि करना हैं।

र् प्रत्याहार की सिद्धि

हयवरट् सूत्र के र से लेकर लण् सूत्र में इत् संज्ञक जो अकार है उस अकार को मिलाने से र् अ ट् ट् की इत्संज्ञा होकर र् अ बना। इन दोनों वर्णो को मिलाने से र प्रत्याहार की सिद्धि होती हैं। र प्रत्याहार के अन्तर्गत र् और ल् ये दो वर्ण आते हैं।

र् प्रत्याहार का प्रयोजन

29. उरण् रपरः 1 । 1 । 51 ॥ ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम् । तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते । कृष्णार्द्धिः तवल्कारः ॥

अर्थ - 'ऋ' यह तीस प्रकार की संज्ञा है वह संज्ञा प्रकरण (अणुदित् सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः सूत्र) में कहा जा चुका है। उस तीस प्रकार वाले ऋ के स्थान पर यदि अण् आदेश करना हो तो वह र पर में वाला ही प्रवृत्त होता है अर्थात् र पर होता है।

ऋ वर्ण के स्थान पर अण् अ इ उ आदेश होगा तो वह र प्रत्याहार वाले वर्ण परे वाला होता है अर्थात् उस अण् से परे र् और ल् वर्ण होते हैं । यथा - अ प्राप्त होता है तो अर, अल् तथा इ प्राप्त हुआ तो इर्, इल्, इसी प्रकार उ प्राप्त हुआ तो उर् उल् बनते हैं। इसी तरह सर्वत्र समझना चाहिए। गुण कार्य में यदि स्थानी ऋ है तो आदेश अर् होगा, क्योंकि ऋ तथा र् दोनों का स्थान एक है। इसी प्रकार लृ के स्थान पर अकार के प्राप्त होने पर अल् होगा। क्योंकि लृ और ल् का स्थान एक हैं।

र् प्रत्याहार का उदाहरण

कृष्णार्द्धि कृष्ण + ऋद्धि यहां पर कृष्ण में जो णकार में अकार है उस अकार से परे अच् प्रत्याहार का वर्ण ऋद्धि का ऋकार होने के कारण आद् गुणः सूत्र से पूर्व में अ और पर में ऋ के स्थान पर एक गुण प्राप्त होता है। ऋ का स्थान मूर्धा तथा अकार का स्थान कण्ठ है अ, ए, ओ, इन तीनों गुणों में से कण्ठ स्थान तो सबका मिलता है पर मूर्धा स्थान किसी का नहीं मिलता। अब यदि पूर्व और पर दोनों के स्थान पर अ गुण होगा तो उरण् रपरः सूत्र से अ से परे र प्रत्याहार प्राप्त होता है र प्रत्याहार में र और ल् दो वर्ण आते है। स्थानेऽन्तरतमः सूत्र द्वारा ऋ के स्थान पर अण् करने पर उस अण् से परे ''र'' और लृ के स्थान पर अण् करने पर उससे परे ल भी साथ में प्रवृत्त होता है। यहां पूर्व $ पर के स्थान पर एकादेश होने से ऋ के स्थान पर अण् (अ) करना है। अतः उस अ से परे र भी हो जाता है अर्थात् अर् हो जाता है। इस प्रकार अर् का स्थान कण्ठ, मूर्धा होने से स्थानी ऋ और आदेश र् दोनों का स्थान एक हो जाते है। तो अब अर् एकादेश होने से कृष्ण् + अर् +द्धि बना। ण् में अ मिला तथा र् द्धि के उपर चले जाने के कारण कृष्णर्द्धिः प्रयोग सिद्ध होता हैं।

ल् का उदाहरण

तवल्कारः -तव् + लृकारः यहाँ पर पूर्व में विद्यमान वकार में अकार तथा पर में अच् प्रत्याहार

का वर्ण लृकार का लृ के स्थान पर स्थानेऽन्तरमः और उरण् रपरः की सहायता से आद्गुणः से लपर सहित अल् गुण होकर तव् + अल् + कारः बना। वर्ण सम्मेलन होने पर तवल्कारः प्रयोग सिद्ध होता हैं।

गुणसन्धि में गुण संज्ञक अवर्ण का उदाहरणः-

विग्रह	आदेश	सन्धि
कृष्ण + ऋद्धिः	कृष्ण् + अर् +द्धि	कृष्णर्द्धि
महा + ऋषिः	मह् + अर् + षि	महर्षिः
उत्तम + ऋतुः	उत्तम् + अर् + णः	उत्तमर्णः
ग्रीष्म + ऋणः	ग्रीष्म + अर् +तुः	ग्रीष्मर्तुः
सप्त + ऋषिः	सप्त् + अर् + षिः	सप्तर्षिः
अधम +ऋणः	अधम् + अर् + णः	अधमर्णः
राजा + ऋषिः	राज् + अर् +षिः	राजर्षिः
ब्रह्म + ऋषिः	ब्रह्म + अर् + द्धि	ब्रह्मर्षिः
पुण्य + ऋद्धि	पुण्य् + अर् + द्धि	पुण्यर्द्धिः
परम् + ऋतः	परम् + अर् + त	परमर्तः
वसन्त + ऋतुः	वसन्त् + अर् + तुः	वसन्तर्तुः
तव + लृकारः	तव् + अल् + कारः	तवल्कारः
मम + लृकारः	मम् + अल् + कारः	ममल्कारः
तव + लृदन्तः	तव् + अल् + दन्तः	तवल्दन्तः
मम् + लृवर्णः	मम् +अल् + वर्णः	ममल्वर्णः

इस प्रकार आपने गुण सन्धि में गुणसंज्ञक तीनों वर्णो के विषय में विशेष रूप से अध्ययन किया गया।

लोप विधायक विधि सूत्रः-

30 लोपः शाकल्यस्य 8 । 3 । 19 ।।

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे ।।

अर्थ - अश् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो, अवर्ण पूर्व वाले पदान्त यकार वकार को विकल्प से लोप होता है। जिन यकार वकार का लोप करना है वह पदान्त में हो अर्थात् पद के अन्त में हो और उस यकार वकार से पूर्व में अवर्ण हो तथा यकार के बाद अश् (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ´ म ड. ण न भ थ ढ ध ज ब ग ड द) का वर्ण हो तब य तथा व का लोप होता है।

पदान्त किसे कहते है जिनके अन्त में सुबन्त अर्थात् सु, औ, जस, अम् औट्, शस् इत्यादि इक्कीस प्रत्यय हो उन्हे सुबन्त कहते है जिसको हम शब्द रूप कहते है।

तिङन्त - जिसके अन्त में तिप् तस् झि इत्यादि अट्ठारह प्रत्यय हो उन्हें हम तिङन्त कहते है अर्थात् उसको धातु रूप कहते है जैसे भवति गच्छति इत्यादि।

हर इहः- हरे + इह यहां पर हरे जो शब्द है वह सम्बोधन के एक वचन का रूप है अतः उसकी पद संज्ञा होती है अर्थात् वह पदान्त है। यहां पर हरे में जो रे में ए है। वह ए एच् प्रत्याहार में आता है और पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है इह का इ इसलिए एचोऽयवायावः सूत्र से ए के स्थान में अय् आदेश होकर हर् अय् + इह बना। र् में अय् का अकार मिलकर हरय् + इह बना। अब यहाँ हरय् + इह में अश् प्रत्याहार का वर्ण है इह में इ। तथा पूर्व में पदान्त यकार है, हरय् में य्। उस य के पूर्व में अ वर्ण है र में अकार है। इसलिए लोपः शाकल्यस्य सूत्र से य् का लोप होकर हर + इह प्रयोग सिद्ध होता है यहाँ पर लोप विकल्प से होता है जिस पक्ष में लोप होगा उस पक्ष में हर + इह बना। और जिस पक्ष में लोप नहीं होगा, उस पक्ष में हरय् + इह बना। और वर्ण सम्मेलन होकर हरयिह प्रयोग सिद्ध होता है। हर + इह इस स्थिति में आद गुणः से अकार और इकार मिलकर एकार गुण होना चाहिए। इस गुण को निषेध करने के लिए अगला सूत्र प्रवृत्त होता है।

अधिकार सूत्र -

31 पूर्वत्राऽसिद्धम् 8 । 2 । 1 ।।

सपादसप्ताध्यायी प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम्।
हर इह, हरयिह। विष्ण इह, विष्णविह।।

अर्थः- सात अध्यायों के प्रति त्रिपादी सूत्र असिद्ध होते है और त्रिपादी में भी पूर्व शास्त्र के प्रति पर शास्त्र असिद्ध होते हैं।

व्याख्याः- पाणिनि अष्टध्यायी व्याकरण शास्त्र का अत्यन्त महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ है। पाणिनि अष्टाध्यायी में लगभग तीन हजार नव सौ पचहत्तर सूत्र है। इन्हीं सूत्रों के उपर व्याकरण शास्त्र का निर्माण किया गया। महामहोपाध्याय श्रीमद् भट्टोजिदीक्षित ने प्रयोगों के अनुसार इन्हीं सूत्रों का क्रम से निर्माण करके सिद्धान्त कौमुदी की रचना की। पाणिनि अष्टाध्यायी में आठ अध्याय है। प्रतिध्याय में चार पाद है इन्हीं बत्तीस पादों में सभी सूत्र समाहित है।

इस प्रकार आठ वे अध्याय का दूसरा तीसरा चौथा पाद त्रिपादी है और सात अध्याय एक पाद सपादसप्ताध्यायी अर्थात् सवा सात अध्याय है।

त्रिपादी और सपादसप्ताध्यायी के मध्य यह निर्णय करता है कि समस्त सपादसप्ताध्यायी के प्रति समस्त त्रिपादी सूत्र असिद्ध होते हैं। अर्थात् सामान जगहों पर सपादसप्ताध्यायी के सूत्र एवं त्रिपादी के सूत्र प्रवृत्त होते है। और त्रिपादी में पूर्व सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध हो जाता है। यथा आद्गुणः सवासात् अध्यायों के अन्तर्गत् सूत्र है। (छठे अध्याय प्रथम-पाद का चौरासिवॉ (84) सूत्र है) इसके दृष्टि में आठवें अध्याय के तीसरे पाद में वर्तमान लोपः शाकल्यस्य सूत्र असिद्ध है, अतः आद्गुणः सूत्र लोपः शाकल्यस्य सूत्र द्वारा किये गये यकार के लाप को नहीं देखता अतः इसे तो अब भी यकार सामने पड़े हुऐ दिखाई दे रहा है। अवर्ण से परे यकार के दिखाई देने से अच् प्रत्याहार पर में न होने के कारण आद् गुणः सूत्र द्वारा गुण एकादेश नहीं होगा, तो हर इह ऐसा ही रहेगा और जिस पक्ष में यकार का लोप लोपः शाकल्यस्य से नहीं होगा उस पक्ष में हरयिह ऐसा प्रयोग सिद्ध होता हैं।

लोपः शाकल्यस्य सूत्र यकार वकार दोनों को लोप करता है यकार के लोप का उदाहरण तो आपने हर इह बनाया। वकार का उदाहरण सक्षेप में:-

विष्णो इह:- विष्णो + इह यहां विष्णो शब्द सम्बोधन। एक वचन का रूप है इसलिए यह पदान्त है। अब एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा ओकार के स्थान में अव् आदेश होकर विष्ण् + अव् + इह बना। विष्ण् में ण् में अव् का अकार मिलकर विष्णव् + इह बना। अब यहाँ पदान्त वकार का वर्ण है विष्णव् में व् तथा पर में अश् प्रत्याहार का वर्ण है इह का इकार इसलिए लोपः शाकल्यस्य सूत्र के द्वारा वकार का लोप होकर विष्ण + इह बना। अब यहां पर आद् गुणः सूत्र से पूर्व में ण में अकार तथा पर में इह का इकार इन दोनों वर्णो के स्थान में गुण रूप एकादेश होना चाहिए किन्तु पूर्वत्रासिद्धम सूत्र द्वारा आद गुणः की दृष्टि में लोपः शाकल्यस्य सूत्र द्वारा वकार का लोप नहीं हुआ है। इसलिए आद्गुणः सूत्र द्वारा वकार का दिखायी देने के कारण गुण नहीं हुआ। लोप विकल्प से होता है जिस पक्ष में लोप होगा उस पक्ष में विष्ण इह रूप बनेगा। जिस पक्ष में लोप नहीं होगा उस पक्ष में विष्ण्व् + इह बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णविह प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए।

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
हरे + इह	हर् + अय् + इह	हर इह
विष्णो + इह	विष्ण् + अव् + इह	विष्ण इह
पुत्रौ +आगच्छतः	पुत्र + आव् + आगच्छत	पुत्रा आगच्छत
गुरौ + आयाते	गुर् +आव् + आयते	गुरा आयते
भानौ + अपि	भान् + आव् + अपि	भाना अपि
बने + ऋषयः	वन् + अय् + ऋषयः	वन ऋषयः
ते + इच्छन्ति	त् + अय् + इच्छन्ति	त इच्छन्ति
रवौ + उदिते	रव् + आव् + उदिते	रवा उदिते
गृहे + आसीत्	गृह + अय् + आसीत्	गृह आसीत्
करौ + एतौ	कर् + आव् + एतौ	करा एतौ

अभ्यास प्रश्न

1. गो अग्रम किस सूत्र का उदाहरण है?
2. प्लुत किसे कहते है?
3. हरी एतौ में कौन सा सूत्र लगा है?
4. अदस् शब्द के मकार से परे इत् ऊत् की क्या होती है?
5. चादियों का द्रव्य अर्थ न हो तो उनकी क्या होती है?
6. आङ् को छोड़कर एक मात्र की क्या होती है?
7. ओकार अन्तवाला निपात की क्या होती है?
8. चक्रि अत्र में यहाँ पर पदान्त इक् है?

9. असवर्ण अच् के परे होने पर पदान्त इक् को क्या होता है ?
10. ह्रस्व विधान सामर्थ्य से कौनसी सन्धि नहीं होती है?
11. चक्रिअत्र यह किस सूत्र का उदाहरण है?
12. गौरी +औ में यहां पर इकोऽसवर्णे से ह्रस्व क्यों नहीं हुआ?
13.अच से परे रेफ और हकार ओर उस के रेफ और ह से परे यर को क्या होता है?
14. असवर्ण अच् परे होने पर पदान्त इक् को ह्रस्व नहीं होता है कहां पर?
15. ऋकार परे होने पर पदान्त अक् को विकल्प से क्या होता है ?

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. गो अग्रम में सन्धि हुई है :-
(क) गुण (ख) दीर्घ (ग) प्रकृतिभाव (घ) अयादि
2. प्लुत और प्रगृह्यसंज्ञक अच् परे होने पर होता है:-
(क) प्रकृतिभाव (ख) पररूप (ग) पूर्वरूप (घ) गुण
3. इदन्त, उदन्त और द्विवचन की होती है:-
(क) प्रगृह्य संज्ञा (ख) प्लुत संज्ञा (ग) ह्रस्व संज्ञा (घ) दीर्घ संज्ञा
4. ब्रह्म ऋषिः किस सूत्र का उदाहरण है:-
(क) आदगुणः (ख) अकः सवर्णेदीर्घः (ग) ऋत्यकः (घ) अनचि च

4.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप जान चुके है कि अयादि संधि किसे कहते हैं तथा अयादि संधि का विधान कहॅा और किस प्रकार किया जाता है, साथ ही गुण संधि से सम्बन्धित सूत्रों तथा उनसे बनने वाले प्रयोगो को कैसे सिद्ध किया जाता है। इस इकाई में आपने अयादेश, अवादेश, व गुण संज्ञा विधायक विधि सूत्रों का अध्ययन किया है। यदि अवर्ण से परे अच् हो तो पूर्व और पर के स्थान पर गुण एकादेश होता है। उपेन्द्र: और गंगोदकम् आदि इसके उदाहरण है। जो अच उपदेश अवस्था में अनुनासिक होता है उसकी इत् संज्ञा होती है। पाणिनि ने अनुनासिक धर्म वाले वर्णों को परम्परया बताया है। लोप का अतिरिक्त विधान शाकल्य ऋषि के मत में भी प्रशस्त है। लोप: शाकल्यस्य इसका सूत्र है। अन्त में पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र की व्याख्या करके इकाई का वर्ण्य विषय समाप्त है। महामहोपाध्याय श्रीमद् भट्टोजिदीक्षित ने प्रयोगों के अनुसार इन्हीं सूत्रों का क्रम से निर्माण करके सिद्धान्त कौमुदी की रचना की। पाणिनि अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं। प्रतिध्याय में चार पाद है इन्हीं बत्तीस पादों में सभी सूत्र समाहित है।
इस प्रकार आठवे अध्याय का दूसरा तीसरा चौथा पाद त्रिपादी है और सात अध्याय एक पाद सपादसप्ताध्यायी अर्थात् सवा सात अध्याय है। त्रिपादी और सपादसप्ताध्यायी के मध्य यह निर्णय करता है कि समस्त सपादसप्ताध्यायी के प्रति समस्त त्रिपादी सूत्र असिद्ध होते हैं। अर्थात् सामान जगहों पर सपादसप्ताध्यायी के सूत्र एवं त्रिपादी के सूत्र प्रवृत्त होते है। और त्रिपादी में पूर्व सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध हो जाता है। यथा आद्गुणः सवासात् अध्यायों के अन्तर्गत् सूत्र है।

(छठे अध्याय प्रथम-पाद का चौरासिवॉ (84) सूत्र है) इसके दृष्टि में आठवें अध्याय के तीसरे पाद में वर्तमान लोपः शाकल्यस्य सूत्र असिद्ध है, अतः आद्गुणः सूत्र लोपः शाकल्यस्य सूत्र द्वारा किये गये यकार के लाप को नहीं देखता अतः इसे तो अब भी यकार सामने पड़े हुऐ दिखाई दे रहा है। अवर्ण से परे यकार के दिखाई देने से अच् प्रत्याहार पर में न होने के कारण आद् गुणः सूत्र द्वारा गुण एकादेश नहीं होगा, तो हर इह ऐसा ही रहेगा और जिस पक्ष में यकार का लोप लोपः शाकल्यस्य से नहीं होगा उस पक्ष में हरयिह ऐसा प्रयोग सिद्ध होता हैं। अत: इस इकाई के अध्ययन से आप इसमें सीखे हुये प्रयोगों को सूत्रोल्लेख पूर्वक सिद्ध कर सकेगें।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
गोअग्रम्	गाय का अग्र भाग
गौः	गाय का
गवेन्द्रः	सांड़ , बड़ा बैल
हरी एतौ	ये दोनों हरि, घोड़े, बन्दर है
विष्णू इमौ	ये दोनों विष्णु हैं
अमी ईशाः	ये दोनों स्वामी हैं
रामकृष्णावमू आसाते	राम कृष्ण दोनों बैठे हैं।
इ इन्द्रः	यह इन्द्र है
उ उमेशः	यह शिव है
आ एवं नु मन्यसे	तुम ऐसा मानते हो
आ एवं किल तत्	हाँ यह ऐसा ही था
ओष्णम्	कुछ गरम कुछ ठण्डा
अद्ये ईशाः	अहो ये स्वामी हैं
किम्वुक्तम्	क्या कहा
चक्रि अत्र	विष्णु यहाँ है
वाप्यश्वः	बावड़ी में घोड़ा

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (सर्वत्र विभाषा गोः)
2. (त्रिमात्रिक को प्लुत कहते है)
3. (इदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्)
4. (प्रगृह्य संज्ञा)
5. संज्ञा
6. (प्रगृह्य संज्ञा)

7. (प्रगृह्य संज्ञा)
8. (क्रिमेंड्)
9. (ह्रस्व)
10. (स्वर सन्धि)
11. (इकोऽसवर्णेकल्यस्य ह्रस्वश्च)
12. (पदान्त न होने से)
13. (द्वित्व)
14. (समास में)
15. (ह्रस्व)

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. (ग)
2. (क)
3. (क)
4. (ग)

4.7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी - डॉ रविनाथ मिश्र एवं डॉ देवेश कुमार मिश्र प्राच्य भारती प्रकाशन गोरखपुर

4.9. निबन्धात्मक प्रश्न

1. तपरस्तत्कालस्य सूत्र की व्याख्या कीजिये।
2. लोपविधायक विधि सूत्र को समझाइये।
3. र् प्रत्याहार को उदाहरण सहित बताइये।
4. गुण संज्ञा की परिभाषा करते हुये नायक: प्रयोग की सिद्धि कीजिये।

इकाई 5: वृद्धिरादैच् से एङः पदान्तादति तक

इकाई की रूप रेखा

5.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह पॉचवी इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने अयादेश और अवादेश आदि का अध्ययन किया है । प्रस्तुत इकाई में आप वृद्धि संधि से सम्बद्ध सूत्रों व उनसे जुड़े हुये प्रयोगों की सिद्धि सीखेंगे।

आ ऐ औ ये तीन वर्ण वृद्धि संज्ञक होते हैं। दीर्घ आकार और ऐच् प्रत्याहार ऐ, औ ये तीन वर्ण वृद्धि संज्ञक होते है। अन्यत्र जहां कहीं भी अन्य सूत्र संज्ञक होते है। अन्यत्र जहां कहीं भी अन्य सूत्र के द्वारा भी वृद्धि करना हो तो वहां पर आ, ऐ, औ ये तीन वर्ण वृद्धि के रूप में उपस्थित होते हैं । इस इकाई में क्रियावाची भू आदि धातु में की संज्ञा वाचकता व टि संज्ञा के विधायक विधि सूत्र का वर्णन आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है।

अत: इस इकाई के अध्ययन से आप वृद्धि, पररूप, सवर्ण दीर्घ, पूर्व रूप सन्धियों को समझाते हुये उनमें आये हुए प्रयोगों को सिद्ध करेंगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- वृद्धि सन्धि के विषय में बताये गये नियमों को समझायेंगे।
- उपसर्गों का वर्णन कर सकेंगे।
- पररूप सन्धि के विषय में अवगत करायेंगे।
- टि संज्ञा का परिचय दे सकेंगे।
- दीर्घ सन्धि के सूत्रों की व्याख्या करेंगे।
- पूर्वरूप सन्धि के नियमों को बतायेंगे।

5.3 वृद्धि सन्धि

32 वृद्धिरादैच् 1 । 1 । 1 ।। आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् ।।

अर्थ - आ ऐ औ ये तीन वर्ण वृद्धि संज्ञक होते हैं। दीर्घ आकार और ऐच् प्रत्याहार ऐ, औ ये तीन वर्ण वृद्धि संज्ञक होते है। अन्यत्र भी अन्य सूत्र वृद्धि संज्ञक होते है। अन्यत्र जहां कहीं भी अन्य सूत्र के द्वारा भी वृद्धि करना हो तो वहां पर आ, ऐ, औ ये तीन वर्ण वृद्धि के रूप में उपस्थित होते है। अर्थात् जहां कहीं भी वृद्धि शब्द का उच्चारण करना हो तो, उससे आ ऐ औ ही समझे जायेंगे। वृद्धिरादौच यह सूत्र पाणिनि अष्टाध्यायी का प्रथम सूत्र है अर्थात् पहले अध्याय के पहले पाद का पहला सूत्र है। जिस प्रकार गुण शब्द से अ, ए, ओ तीन वर्ण ग्रहण होते हैं उसी प्रकार वृद्धि शब्द से आ, ऐ, औ ये तीन वर्ण ग्रहण किये जायेगें। इस वृद्धि संज्ञक वर्ण का फल अगले सूत्र में दिखाते हैं।

33 वृद्धिरेचि 6 । 1 । 88 ।।आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणापवादः । कृष्णैकत्वम् । गंगौघः देवैश्रेर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम ।।

अर्थ - अवर्ण से एच् प्रत्याहार ए, ओ, ऐ, औ का वर्ण पर (बाद में) हो तो, पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश होता है। यह सूत्र पूर्ण और पर दो वर्णो के स्थान पर एक ही वर्ण आदेश होने का विधान करता है पूर्व में अवर्ण हो और पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो पूर्व और पर दोनों वर्णो के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक आ, ऐ, औ ये तीनों वर्ण एक साथ प्राप्त होता है। यह सूत्र आद गुणः का बाधक है। आद्गुण सूत्र अधिक वर्ण को मानकर गुण करता है। अर्थात् अच् प्रत्याहार को मानकर गुण करता है और वृद्धि रेचि सूत्र कर्म वर्ण को मानकर गुण करता है अर्थात् एच् प्रत्याहार मानकर वृद्धि करता है। अच् प्रत्याहार का वर्ण है अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ तथा एच् प्रत्याहार का वर्ण है ए, ओ, ऐ, औ अतः अच् प्रत्याहार में एच् प्रत्याहार का वर्ण समाहित है अर्थात् अच् प्रत्याहार में एच् प्रत्याहार स्वयं पढ़ा गया है। इसलिए जहां वृद्धि होगी वहां अपने आप आद गुणः सूत्र पहले से प्राप्त है उसका बोधकर वृद्धि रेचि से वृद्धि होती है क्योंकि दोनों सूत्रों में बाध्य बाधक भाव सम्बन्ध है। अर्थात् जो अधिक में कहा गया है वह बाध्य है और जो कम में कहा गया है वह बाधक है तो बाध्य हो गया आद्गुणः और बाधक हो गया वृद्धि रेचि सूत्र ।

कृष्णैकत्वम् - कृष्ण + एकत्वम् यहां पर अवर्ण से अच् परे होने के कारण आद् गुणः से गुण की प्राप्ति हुई तो उस गुण को बाधक वृद्धि रेचि यह सूत्र लगा। यहां अवर्ण है कृष्ण में ण में अ तथा पर में एच् प्रत्याहार का वर्ण है एकत्वम् का ए ! अ + ए इन दोनों वर्णो के स्थान पर वृद्धि संज्ञक आदेश वाले वर्ण आ, ए, औ, ये तीनों एक साथ प्राप्त हुए। इसलिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र द्वारा स्थान मिलाने पर कृष्ण में णकार में जो अकार है उसका स्थान कष्ठ है तथा पर मे एकत्वम् का जो एकार है उसका स्थान कण्ठतालु है स्थानी ओ अ और ए है इन दोनों का स्थान कण्ठातालु है अब आदेश वाला वणै्र तीन आ, ऐ, औ है उसमें कौन सा वर्ण कण्ठतालु वाला है? खोजा गया तो इन तीनों वर्णो में से ऐ कण्ठतालु वाला वर्ण है अत ऐ आदेश हुआ। कृष्ण में ण में अकार तथा एकत्वम के एकार इन दोनों के स्थान पर ए आदेश होकर कृष्ण् + ऐ + कत्वम् बना। वर्ण सम्मेलन होने पर ण में ए जाकर मिल गया तो कृष्ण कत्वम् प्रयोग सिद्ध होता है। यह तो एच् प्रत्याहार में से केवल ए का उदाहरण दिया गया। अब औकार का उदाहरण क्या होगा? आगे देखे।

गंगौध:- गंगा+ओधः यहाँ पर पूर्व के समान प्रक्रिया होनी है। यहां अवर्ण है गंगा में आकार और पर में एच् प्रत्याहार का वर्ण है ओधः का ओ। आकार का स्थान कण्ठ है तथा ओकार का स्थान ओष्ठ है अब यहां तीनों वर्णो से कण्ठ ओष्ठ वाला वर्ण औ है इसलिए आ तथा ओ इन दोनों वर्णो के स्थान पर औ आदेश होता है। गंगा+ औ + ध् अतः ग्ड. में और मिलकर गंगौधः प्रयोग सिद्ध होता है। ऐ परे होने का उदाहरण आगे देखे।

देवैश्र्यम् - देव + ऐश्वर्यम् यहां पर पूर्व में अकार तथा पर में एच् प्रत्याहार का वर्ण ऐश्वर्यम् का ऐ परे होने के कारण अ + ए दोनों के स्थान पर कण्ठ तालु वाला वर्ण वृद्धि रेचि सूत्र से वृद्धि संज्ञक

वर्ण ऐ आदेश होता है। देव् + ऐ + श्वर्यम् अब यहां पर वकार में ऐकार मिलकर देवैश्वर्यम् प्रयोग सिद्ध होता है ।

कृष्णौत्कण्ठयम्:- कृष्ण +औत्कण्ठयम् में पूर्व में अकार तथा पर में एच् प्रत्याहार का वर्ण औंकार है दोनों का स्थान कण्ठ-ओष्ठ है यहां पर भी आद्गुणः से गुण की प्राप्ति थी उसको बांधकर वृद्धि रेचि सूत्र द्वारा अ तथा औंर के स्थान पर कण्ठ औष्ठ स्थान वाला वर्ण औ आदेश होकर कृष्णोत्कष्ठयम् प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार एच् प्रत्याहार के चारों वर्णो का उदाहरण दिया गया।

34 एत्येधत्यूठ्सू 6 । 1 । 89 ।।

अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिकारेकादेशः स्यात् । पररूपगुणापवादः उपैति। उपैधते। प्रष्ठोहः। एजाद्योः किम् ? उपेतः । मा भवान्प्रेदिधत्

अर्थ - अवर्ण से एच् प्रत्याहार का वर्ण हो जिसके आदि में ऐसे इण् धातु या एध् धातु अथवा उठ के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान वृद्धि संज्ञक एक आदेश होता है यह सूत्र एङिपररूपम् तथा आद् गुणः का बाधक है ।

उपैति - उप + एति ('एति' यह पद इण् गतौः धातु के लट् लकार के प्रथम पुरूष एक वचन का रूप है। यहां उप में प में जो अकार है वह अवर्ण है उस अवर्ण से परे एच् प्रत्याहार का वर्ण आदि में है। इण् गतौ धातु का है। एति का एकार। पूर्व में अकार पर में एकार होने से इस सूत्र से दोनों वर्णो के स्थान वृद्धि संज्ञक तीनों वर्ण प्राप्त है। स्थानेऽन्तरमः सूत्र की सहायता से कण्ठ और तालु स्थान वाला वर्ण ऐ होता है क्योंकि प में जो अकार है उसका स्थान कण्ठ है तथा एति का जो एकार है उसका स्थान तालु है इसलिए उप में प अ तथा एति का ए इन दोनों के स्थान में ऐ वृद्धि रूप का एकादेश होकर उप् + ऐ + ति बना। प में ऐ मिलाने से उपैति प्रयोग सिद्ध होता है।

उपैधते - उप + एधते यह पद् एध् वृद्धौ धातु के लट् लकार के प्रथम पुरूष एक वचन का रूप है। यहां पर उप में प में अ वर्ण से परे एध् धातु का एच् प्रत्याहार का आदि में वर्ण है एध का ए इसलिए पूर्व में अकार तथा पर में एकार इन दोनों वर्णो के स्थान वृद्धि संज्ञक वर्ण ऐ होकर उप् ऐ +धते बना। प में ऐ के मिलने से उपैधते प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रष्ठौहः - प्रष्ठ + ऊह (यहां पर उठ् है। यह कैसे है? यह हलन्तपुलिंग प्रकरण में वाह उठ सूत्र को देखे) यहां पर सूत्र लगा एत्येधत्यूठ्सु यह सूत्र कहता है कि अ वर्ण से उठ् के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धि संज्ञक वर्ण एक आदेश होता है अवर्ण है पूर्व में प्रष्ठ में ठ में अ पर में उहः यह उठ संज्ञक वर्ण है। अतः पूर्व में अ पर में उकार है। अ: उ दोनों वर्णो के स्थान पर स्थानेऽन्तरतमः सूत्र की सहायता से वृद्धि संज्ञक वर्ण औ आदेश होता है अ + उ = औ होकर प्रष्ठ् + औ + हः बना। ठ् में औ के मिलने से प्रष्ठौहः प्रयोग सिद्ध होता है।

एजाद्यौः किम् ? - अब यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस सूत्र में इण और एध् धातु में एजादि क्यों कहा गया? अर्थात् एजादि अर्थात् एजादि नहीं कहते तो कौन सी हानि हो जाती? इसका उत्तर यह है कि एजादि नहीं कहते तो उपेतः और प्रेधित् प्रयोगों में वृद्धि हो जाती ।अनिष्ट होने लगता है यथा+ उपेतः (वे दोनो पास जाते है) उप+इतः (इतः यह पद इण् गतौ धातु का क्तान्त रूप है

अथवा लट् लकार के प्रथम पुरूष द्विवचन का रूप है।) यहाँ अवर्ण से परे इण् धातु तो है, पर एच् प्रत्याहार का वर्ण आदि में नही है । अतः एत्येधत्यूठ्सू सूत्र से वृद्धि नही होगा, तो आद्गुणः से गुण होकर उपेतः यह प्रयोग सिद्ध होता है । इसी प्रकार प्रेदिधत प्र + इदिधत (आप अधिक न बढ़ावे) इदिधत यह णिजन्त एध्धातु के लङ् लकार के प्रथम पुरूष एकवचन का रूप है। यहाँ पर अवर्ण से परे एध् धातु तो है, पर एच् प्रत्याहार का वर्ण पर में न होने से इस सूत्र से वृद्धि नहीं होती है। अतः आद् गुण से गुण होकर प्रेदिधत यह प्रयोग स्पष्ट रुप से सिद्ध किया जाता है।

सूत्र में एति और एधति से इण् और एध धातु का ही ग्रहण समझना चाहिये। ये दोनों उदाहरण एत्येधत्यूठ्सु सूत्र का प्रत्युदाहरण है। विपरीत उदाहरणो को प्रत्युदाहरण कहते हैं।

वा ४- अक्षादुहिन्यामुपसंख्यानम् ।। अक्षौहिणी सेना ।।

अर्थ -अक्ष शब्द के अन्त्य अवर्ण से 'ऊहिनी' शब्द का आदि ऊकारे के परे होने से पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धि रुप एकादेश होता है। ऐसा अधिक वचन बोलना चाहिये ।

अक्ष+ऊहिनी यहाँ पर अवर्ण है अक्ष के अ, पर मे अच् प्रत्याहार का वर्ण है ऊहिनी का ऊकार, पूर्व और पर इन दोनों के स्थान में आद्गु णः से गुण प्राप्त है। उस गुण को बाधकर इस वार्तिक के द्वारा यहाँ पर अक्ष शब्द से ऊहिनी शब्द परे होने के कारण अक्ष में अ, तथा ऊहिनी का ऊकार, इन दोनो के स्थान पर वृद्धि रुप एकादेश औ होकर अक्ष्, औ+हिनी बना। वर्ण सम्मेलन होकर अक्षौहिनी प्रयोग बना। तथा **पूर्वपदात् संज्ञायामगः** इस सूत्र से नकार को णकार करने पर अक्षौहिणी प्रयोग सिद्ध होता है।

५ - प्रादूहोढोढयेषैष्येषु ।

प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः। पैष्यः।।

अर्थ -प्र शब्द के अकार से ऊह, ऊढ, ऊढि, एष तथा एष्य शब्दों के आदि में अच् प्रत्याहार का वर्ण परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश रूप होता है ।

प्रौहः प्र+ऊहः। यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बांधकर इस वार्तिक के द्वारा यहाँ पर प्र शब्द का अकार प्र में अ तथा पर में ऊह शब्द परे होने पर अर्थात् पूर्ण में प्र में अ तथा पर ऊहः अ + ऊ दोनों के स्थान पर वृद्धि रुप एकादेश होकर प्र+औ+हः वर्ण सम्मेलन होकर प्रौहः प्रयोग सिद्ध होता है ।

प्रौढः प्र + ऊढः। यहाँ पर भी आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर इस वार्तिक के द्वारा यहाँ पर प्र शब्द का अकार से परे ऊढ परे होने के कारण पूर्व में अकार तथा पर में ऊढ का ऊकार अर्थात अ+ऊ इन दोनो के स्थान पर इस वार्तिक द्वारा वृद्धि औ होकर प्र+औ+ढः बना । वर्ण सम्मेलन करने के बाद प्रौढः प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रैषः प्र + एष + यहाँ पर एङि' पररुपम् सूत्र से पररुप प्राप्त होता है उस पररुप को बांधकर इस वार्तिक के द्वारा प्र में अ तथा पर में एषः का एकार होने के कारण अ तथा एकार दोनों के स्थान में वृद्धिरुप एकादेश होकर प्र्+ऐ+षः बना । तथा वर्ण सम्मेलन होकर प्रैषः प्रयोग सिद्ध होता है ।

प्रैष्यः:- प्र + एष्यः यहाँ पर एङि पररुपम् सूत्र से पररुप प्राप्त है । इस पररुप को बाधकर इस

वार्तिक द्वारा यहाँ पर प्र मे जो अकारं है उस अकार से एष्य का एकार पर में होने के कारण पूर्व में अ पर में ए, इन दोनों वर्णो के स्थान पर वृद्धि एकादेश होकर प्र्+ऐ+ष्यः बना। वर्ण सम्मेलन होने के बाद प्रैष्यः प्रयोग सिद्ध होता है।

वार्तिक- ऋते च तृतीया समासे, सुखेन ऋतः सुखार्तः तृतीयेति किम्? परमर्तः

अर्थः - अवर्ण से ऋत शब्द के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रुप एकादेश होता है। तृतीया समास में।

सुखार्तः सुखेन+ऋतः इस विग्रह में तृतीया तत्पुरुष समास होकर सुख+ऋतः बना। अब यहाँ आद् गुण से गुण प्राप्त है। उस गुण को बाधकर इस वार्तिक के द्वारा यहाँ पर अवर्ण है सुख में अकार में अकार तथा पर में ऋतः का ऋट होने के कारण अकार तथा ऋकार दोनों के स्थान पर उरण रपरः की सहायता से आर वृद्धि होकर सुख्+आर्+तः बना। सुख में ख में आर का आ मिल कर सुखार्+तःबना। तके उपर रकार का उर्ध्व गमन हो जाने के कारण सुखार्तः प्रयोग सिद्ध होता है।

अब विचार यहाँ यह अपस्थित होता है कि अवर्ण से ऋत परे होने पर वृद्धि विधान समास में ही करना चाहिये। क्योंकि सुखेन ऋतः यहाँ पर लौकिक विग्रह में वृद्धि न होकर गुण एकादेश होने से सुखेनर्तः प्रयोग बनना चाहिए। परन्तु तृतीया का ही समास हो अन्य विभक्तियों का समास न हो इस कथन से क्या प्रयोजन है? क्योंकि समास मात्र में ही वृद्धि का विधान न कर दिये जाये इसका उत्तर यह है कि यदि तृतीया न कहेंगे तो समास मात्र में ही वृद्धि का विधान करेंगे तो परमश्चासौ+ऋतः = परम+ऋतः यहाँ पर गुण न होकर वृद्धि हो जायेगी, क्योंकि समास तो यहाँ भी हुआ। किन्तु समास तो हुआ, पर तृतीया तत्पुरुष समास नहीं हुआ है। इस लिए अकार ऋकर दोनों के स्थान में गुण एकादेश होकर परमर्तः प्रयोग सिद्ध होता है।

वा 6 प्र-वत्सतर- कम्बल- वसनार्ण दशानाम ऋणे।। प्रार्णम् । वत्सतरार्णम् इत्यादि ।।

अर्थ - प्र,वत्सतर,-कम्बल,-वसनार्व ऋण तथा दश, इन शब्दों के अन्त्य अवर्ण से परे ऋण शब्दो के आदि में ऋवर्ण परे हो तो पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रुप एकादेश होता है।

प्रार्णम् - प्र+ऋणम् यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था, उस गुण को बाधकर प्रवत्सरकम्बलवसनार्णदशानामृणे इस वार्तिक द्वारा पूर्व में प्र में अकार तथा पर में ऋणम् का ऋटकार अर्थात् अ+ऋ+इन दोनों वर्णो के स्थान पर आर् वृद्धि होकर प्र्+आर्+णम् बना। प्र में आर् का आकार तथा र् का ण के उपर चले जाने से प्रार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है।

वत्सतरार्णम् - वत्सतर+ऋणम् यहाँ पर आद गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बांधकर प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानाम् ऋणे इस वार्तिक के द्वारा वत्सतर का अकार तथा ऋटणम् के ऋकार अर्थात् अ+ऋ इन दोनों वर्णों के स्थान पर आर् वृद्धि होकर वत्सतर्+आर +णम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर वत्सतरार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है।

कम्बलार्णम्: कम्बल$ऋणम् यहाँ पर आद् गुणःसे गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर प्रवत्सरकम्बलवसनाणदशानाम् ऋणे इस वार्तिक के द्वारा यहाँ कम्बल में ल में अकार तथा पर

मे ऋणम् के ऋकार अर्थात दोनों वर्णो के स्थान पर आर् वृद्धि होकर कम्बल आर्णम् बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर कम्बलावर्णम् प्रयोग सिद्ध होता है।

वसनार्णम् - वसन+ऋणम् यहाँ पर आद् गुणःसे गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर प्रवत्सतर कम्बल-वसनार्णदशानाम् ऋणे इस वार्तिक के द्वारा वसन मे न मे अकार तथा पर मे ऋणम् का ऋ अर्थात् अ+ऋ दोनों के स्थान पर वृद्धि आर् होकर वसन्+आर+णम बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर वसनार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋणार्णम् – ऋण ऋणम् यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर प्रवत्सतर कम्बलवसनार्णदशानाम् ऋणे इस वार्तिक के द्वारा ऋण मे ण मे जो अकार तथा पर मे ऋणम का ऋकार होने के कारण अर्थात् अ ऋ इन दोनो के स्थान पर आर् वृद्धि होकर ऋण आर् णम बना वर्णसम्मेलन होकर ऋणार्णम प्रयोग सिद्ध होता है।

दशार्णम् दश + ऋणम् यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानाम् ऋणे इस वार्तिक द्वारा यहाँ पर पूर्व मे दश मे शकार में जो अकार, तथा पर मे ऋणम् का ऋकार होने के कारण वृद्धि रुप एकादेश होकर दश+आर्+णम् बना। उसके बाद वर्णसम्मेलन होकर दशार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है।

वृद्धि सन्धि का उदाहरण-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
कृष्ण+एकत्वम्	कृष्ण् ऐकत्वम	कृष्णैकत्वम
गंगा+ओघः	गंग+औ+घः	गंगौघः
देव+ऐश्वर्यम्	देव्+ऐ+श्वर्यम्	देवैश्वर्यम्
कृष्ण+औत्काण्ठ्यम	कृष्ण्+औ+त्कण्ठ्यम	कृष्णौत्कण्ठ्यम्
दश+एते	दश्+ऐ+ते	दशैते
जन+एकता	जन्+ऐ+कता	जनैकता
यथा+एव	यथ्+ऐ+व	यथैव
तथा+एव	तथ्+ऐ+व	तथैव
तण्डुल+ओदन	तण्डुल्+औ+दनः	तण्डुलौदनः
राम+एव	राम्+ऐ+व	रामैव
कृष्ण+औत्सुक्यम	कृष्ण्+औ+त्सुक्यम्	कृष्णौत्सुक्यम्
नृप+एश्वर्यम्	नृपर्+ऐ+श्वयम्	नृपैश्वर्यम्
महा+औषधम	मह्+औ+षधम्	महौषधम्
राजा+एषः	राज+ऐ+षः	राजैषः
वीर+एक	वीर्+ऐ+कः	वीरैकः
एक+एव	एक्+ऐ+व	एकैव
तदा+एवम्	तद्+ऐ+वम्	तदैवम्
अत+एकम्त्यम्	अत्+ऐ+कमत्यम्	अतैकमत्यम्

बाल+एषा	बाल्+ऐ+षा	बालैषा
महा+ओजसः	महा+औ+जसः	महौजसः
दीर्घ+एकारः	दीर्घ+ऐ+कारः	दीर्घैकारः
मा+एवम्	म्+ऐ+वम्	मैवम्
चित्+एकाग्रम्	चित्+ऐ+काग्रम्	चितैकाग्रम्
प्लुत+ओकारः	प्लत्+औ+कारः	प्लुतौकारः
एक+एकम्	एक+ऐ+कम्	एकैकम्
तव+ओकः	तव+औ+कः	तवौकः
विम्ब+ओष्ठी	विम्ब+औ+ष्ठीः	विम्बौष्ठीः
पुत्र+एकः	पुत्र+ऐ+कः	पुत्रैकः
मया+एव	मय्+ऐ+व	मयैव
अत्य+एव	अत्य् ऐ+व	अत्यैव

वृद्धि सन्धि में एत्येधत्युठसु सूत्र का उदाहरण

प्र+ऊह	प्र+औ+हः	प्रौहः
प्र ऊ ढः	प्र्+औ+ढः	प्रौढः
प्र+ऊढि	प्र्+औ+ढिः	प्रौढिः
प्र+एष्य	प्र्+ऐ+ष्य	प्रैष्यः
उप+ति	उप्+ऐ+ति	उपैति
उप्+एधते	उप्+ऐ+धते	उपैधते
प्रष्ठ+उहः	प्रष्ठ्+औ+हः	प्रष्ठौहः
अक्ष+उहिनी	अक्ष्+औ+हिनी	अक्षौहिनी
सुख+ऋतः	सुख्+आर्+तः	सुखार्तः
दश्+ऋणः	दश्+आर्+णः	दशार्णः
तव+एति	तव्+ऐ+ति	तवैतिः
अव+एधते	अव्+ऐ+धते	अवैधते
सम+एति	सम्+ऐ+ति	समैति

उपसर्ग संज्ञा का करने वाला सूत्र

35 उपसर्गाः क्रिया योगे 11/4/59।।

प्रादयः क्रिया योगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः।

प्र,परा,अप,सम्,अनु,अव,निस,निर,दुस,दुर,वि,आङ्,नि,अधि,अपि,अति,सु,उत्,अभि,प्रति,परि,उप् , प्र, एते, प्रादयः।

अर्थ- क्रिया के साथ योग होने पर प्र आदि जो बाईस उपसर्ग है। उनकी उपसर्ग संज्ञा होती है। अर्थात वे उपसर्ग कहलाते है। ये जो 1.प्र ।/ 2.परा।/3.अप/4.सम/5.अनु/6.अव/7.निस्/ 8.निर/9.दु/10.दुर्/11.वि/12आङ्./13.नि/14.अधि/15.अपि/16.अति/17.सु/18.उद्/19.अभि

/20.प्रति/21.परि/22.उप ये बाईस उपसर्ग है। इन उपसर्गा का अर्थ नहीं होता है। फिर भी धातु के साथ इनका योग कर दिया जाता है तो भिन्न भिन्न अर्थो को निकालते है। अर्थात् ये अर्थो के वाचक न होते हुए भी द्योतक होते है। स्वतन्त्र रुप से इनकी निपात संज्ञा होती है। और क्रिया के साथ योग होने पर उपसर्ग संज्ञा भी होती है। और इनको गतिश्च सूत्र से गति संज्ञा भी होती है। इस लिये इनकी उपसर्ग संज्ञा और गति संज्ञा दोनों होती है। इनका प्रयोग हमेशा धातु के पहले प्रयोग किया जाता है। जैसे- भवति धातु है उसके पहले प्र उपसर्ग का प्रयोग करके प्रभवति बनता है।

धातु संज्ञा का विधान करने वाला सूत्र -

36 भूवादयो धातवः 1/3/1।।

क्रिया वाचिनो भ्वादयो धातु संज्ञा स्युः।

अर्थ - क्रिया वाचक भू आदि की धातु संज्ञा होती है ।

यह सूत्र भू आदि की धातु संज्ञा करता है। धातु किसे कहते है जो भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि गणों में अर्थ निर्देशन पूर्वक पढे गये हैं और उनका अर्थ क्रिया अर्थात व्यापार हो, उसे धातु कहते है। जैसे- पठति में पठ् धातु है यह भ्वादि गण में पठित भी है, और पढ़ना यह क्रिया वाचकता रुप अर्थ भी है, पठ् यह धातु है और पठति, गच्छति इत्यादि क्रिया रुप व्यापार है

वृद्धि संज्ञा का विधान करने वाला विधि सूत्र है।

37. उपसर्गादृति धातौ 6/1/ 91//

अवर्णान्ताद्, उपसर्गाद, ऋकारादौ, धातौ परे वृद्धि रेकादेशः स्यात्। प्रार्च्छति

अर्थ - अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकार हो जिसके आदि में ऐसा धातु पर में होतों पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रुप एकादेश होता है। यह सूत्र कहता है कि पूर्व में उपसर्ग हो, उस उपसर्ग के अन्त में अ हो तथा पर में ऋकारादि धातु हो अर्थात् पूर्व में अकार तथा पर में ऋकार दोनों के स्थान में वृद्धि रुप एकादेश होता है ।

प्रार्च्छति - प्र+ऋच्छति यहाँ पर आद् गुण सें गुण प्राप्त है। उस गुण को बाधकर सूत्र लगा उपसर्गादृति धातौ इस सूत्र सें यहाँ पर अवर्णान्त उपसर्ग है। प्र में अ, तथा पर में ऋकारादि धातु है। ऋच्छति का ऋ, अर्थात पूर्व में अ, पर में ऋ, इन दोनों वर्णो के स्थान पर वृद्धि आर् होकर प्र+आर+च्छति बना। वर्ण सम्मेलन होकर प्रार्च्छति प्रयोग सिद्ध होता है।

वृद्धि सन्धि में उपसर्गा दृति धातौ सूत्र का उदाहरण -

विग्रह	आदेश	सन्धि
प्र+ऋच्छति	प्र्+आर्+च्छति	प्रार्च्छति
अप+ऋच्छति	अप्+आर्+च्छति	अपार्च्छति
उप+ऋच्छति	उप्+आर्+च्छति	उपार्च्छति
अव+ऋ´जते	अव्+आर्+´जते	अवार्जते
परा+ऋद्ध्नोति	पर्+आर्+द्ध्नोति	परार्द्ध्नोति

पररूप सन्धि

पररुप विधायक विधि सूत्र

38 .एङि पररुपम् 6/1/94//

आद् उपसर्गाद् एङादौ धातौ परे पररुपमेकादेशः स्यात्/प्रेजते/उपोषति

अर्थ- अवर्णान्त उपसर्ग से एङ् प्रत्याहार हो जिसके आदि में ऐसा धातु पर में हो तो पूर्व और पर के स्थान में पररुप एकादेश होता है। अन्त में अवर्ण हो ऐसा उपसर्ग से परे एङ् (ए, ओ,)प्रत्याहार का वर्ण हो जिसके आदि में ऐसा धातु पर में हो तो पूर्व और पर दोनों के स्थान में पररुप अर्थात् पर में जो रुप है वैसा ही रुप पूर्व में हो जाता है।

प्रेजते - प्र+एजते यहाँ पर आद् गुणः सें गुण प्राप्त है उस गुण को बाधकर सूत्र लगा ।वृद्धिरेचि इस सूत्र सें वृद्धि प्राप्त हुई। उस वृद्धि को बाधकर सूत्र लगा एङिपररुपम् यह कहता है कि अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररुप एकादेश होता है। यहाँ पर अवर्णान्त उपसर्ग है, प्र में अ, तथा पूर्व में एजते(एजृ कम्पने धातु सें लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रुप है) धातु है उस धातु के पूर्व में एङप्रत्याहारका वर्ण है पर में एजते का ए। पूर्व में अ, तथा पर में ए होनें के कारण अर्थात् अ+ए दोनों के वर्णो के स्थान पर पररुप एकादेश हो कर प्र+ए+जते बना। वर्ण सम्मेलन होकर प्रेजते प्रयोग सिद्ध होता है।

उपोषति- उप+ओषती यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर वृद्धिरेचि इस सूत्र से वृद्धि प्राप्त हुई। उसे भी बाधकर एङि पररुपम् सूत्र लगा। यहाँ पर अवर्ण उपसर्ग है उप में प में अ, तथा पर में एङादि धातु है(उष् दोहे धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन का रुप है) ओषति का ओ अर्थात अ+ओ इन दोनों के स्थान में पूर्व सवर्ण सदृश होकर वर्ण ओ होकर उप् ओ+षति बना, वर्ण सम्मेलन होकर उपोषति प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए। पररुप सन्धि में एङिपररुपम् सूत्र का उदाहरण-

विग्रह	आदेश	सन्धि
प्र+एजते	प्र्+ए+जते	प्रेजते
उप+ओषति	उप्+ओ+षति	उपोषति
प्र+एषयति	प्र्+ए+षयति	प्रेषयति
प्र+ओषति	प्र्+ओ+षति	प्रोषति
उप+एहि	उप्+ए+हि	उपेहि

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझना चाहिए।

टि संज्ञा का विधान करने वाला संज्ञा सूत्र

39 अचोऽन्त्यादि टि 1/1/64//

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टि संज्ञः स्यात् ।

अर्थ- अचों के मध्य में जो अन्त्य अच् वह है जिसके आदि में उस शब्द समुदाय की टि संज्ञा होती है । टि संज्ञा कहा पर होती है ? इसका उत्तर दे रहे है । जहाँ अनेक अच् हों वहा पर अन्तिम अच् की ही टि संज्ञा होती है । और जहा एक ही अच् हो उसकी भी टि संज्ञा होती है । और जहा कही हल वर्ण के आदि मे अच वर्ण होतो उस हल् वर्ण के साथ अन्तिम अच् की भी टि संज्ञा होती है । जैसे राम शब्द में अन्तिम अच् प्रत्याहार का वर्ण है म में अकार । उस अकार की टि

संज्ञा नाम पडता है । इसी प्रकार मनस् शब्द है। अन्तिम हल वर्ण है स् उसके आदि मे अच् प्रत्याहार का वर्ण है। न् में अ । उस अस की टि संज्ञा नाम पडता है। जहाँ एक ही अच प्रत्याहार का वर्ण हो उसी को आदि, मध्य अन्त्य माना जाता है । टि संज्ञा का फल क्या है उसको अगले सूत्र मे बताया
जायेगा।

वार्तिकः- शकन्ध्वादिषु पररुपं वाच्यम् ।।

तच्च टेः/शकन्धुः/कर्कन्धुः/कुलटा/मनीषा/आकृतिगणोऽयम/मार्तण्ड।।

अर्थः- शकन्धवादि गण मे पढे गये जो शब्द है । उनके टि को पररुप कहना चाहिये ।

शकन्धुः - शक + अन्धु यहाँ पर अचोऽन्त्यादिटि सूत्र से टि संज्ञा होती है । जैसे- शक मे अच् प्रत्याहार का वर्ण है श मे अ, तथा क मे अ यहाँ अन्तिम अच् है। क का अकार वह अन्तिम अकार न किसी के आदि मे है न किसी के अन्त मे , क वह स्वय अपने आदि मे है । उनकी टि संज्ञा हो गयी । इसके बाद आद् गुणः से गुण प्राप्त था । उस गुण को बाधकर अकः स वर्णे दीर्घः से सवर्ण दीर्घ प्राप्त था । उसे भी बाधकर शकन्ध्वादिषु पररुपम् वाच्यम् इस वार्तिक के द्वारा पररुप होता है टि संज्ञा जहाँ पर होती है वहा पर पररुप होता है । शकन्धु शब्द शकन्धु आदि गण में पढ़े गये है । यहाँ पर टि है शक में क में अ, और पर में है अन्धु का अकार । इन दोनों वर्णो के स्थान पर पररुप होगा । पररुप का तात्पर्य है पूर्व और पर के स्थान पर का जैसा वर्ण पूर्व में हो जाना। यहाँ पर पूर्व में भी अकार तथा पर में भी अकार तथा दोनों अकारों के स्थान पर एक ही अकार होकर शक् अ+न्धुः बना । वर्ण सम्मेलन होकर शकन्धुः प्रयोग सिद्ध होता है ।

कर्कन्धुः- कर्क+अन्धुः यहाँ पर पहले अचोऽन्त्यादि टि से टि संज्ञा करते है । जैसे कर्क मे अच् है क का अकार और अन्त्य अच है। द्वितीय क का अकार वह अन्य किसी के आदि मे नही है।इसलिये द्वितीय अकार की टि संज्ञा हो गयी । इसके बाद आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ प्राप्त था । उसे भी बाधकर शकन्ध्वादिषु पररुपं वाच्यम इस वार्तिक से पररुप होता है।कर्कन्धु शकन्धु आदि गण मे होता है। और टि है क मे अकार और परे मे है। अन्धु का अकार। इन दोनो वर्णो के स्थान पर पररुप होता है। इस पररुप का तात्पर्य है पूर्व मे जो अकार है। वह पर जैसा हो जाना।यहाँ दोनो के स्थान पर अकार होकर कर्क+अ+न्धुः बना। वर्ण सम्मेलन होकर कर्कन्धुः प्रयोग सिद्ध होता है।

मनीषा - मनस् + ईषा यहाँ पर अचोऽन्त्यादि टि इस सूत्र से मनस मे जो अस है उसकी टि संज्ञा हुई। क्योकि अच् प्रत्याहार का वर्ण है। म का अकार, न का अकार, इसमे अन्तिम अच् है न का अकार वह अस् इस समुदाय के आदि मे है। अतः सकार सहित अकार अर्थात अस की टि संज्ञा हुई। यहाँ पर टि संज्ञा का फल शकन्ध्वादिषु पररुपं वाच्यम इस वार्तिक से पररुप करना है। अतः टि को लेकर पररुप करना है। पूर्व में टि संज्ञक वर्ण है मनस् में अस्, और पर में ईषा का ईकार है अर्थात् अस+ई इन दोनों के स्थान पर पर जैसा वर्ण ई हो गया। मन्+ई+षा बना। वर्ण सम्मेलन होकर मनीषा प्रयोग सिद्ध होता है ।

आकृतिगणोऽयम् । यह जो वाक्य है न तो वार्तिक है न सूत्र ही । यह तो वरदराजाचार्य जी का

वाक्य है। यह समझा रहे है कि यह शकन्धु आदि गण है इसमें इतने ही शब्द आते है, ऐसा कोई निश्चित नहीं है। अतः जहाँ जहाँ भी पररुप विधायक सूत्रों की प्राप्ति नहीं हो, किन्तु यदि पररुप हो गया हो तो वहा शकन्धु आदि गण मान लेना चाहिये। यथा- मार्तण्डः शब्द लोक में प्रसिद्ध है इसमे पररुप हुआ मिलता है। अतः इसे भी शकन्धवादि गण के अन्तर्गत मान लेना चाहिये।
मृत+अण्डः यहाँ पर मृत में त में अ तथा पर में अण्डः का अकार होने से अ अ इन दोनों के स्थान पर पररुप एकादेश होकर मृत् अ+ण्डः बना। वर्ण सम्मेलन होकर मृतण्डः प्रयोग सिद्ध होता है मृतण्डः बन जाने के बाद तद्धित प्रत्यय से मृतण्डे भवः मार्तण्डः यहाँ पर मृतण्ड शब्द से तत्र भवः सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होकर मृतण्ड अण् बना। अण् में ण का अनुबन्ध लोप हो जाने पर मृतण्ड+अ बना। उसके बाद तद्धितेश्वचामादेः सूत्र सें आदि शब्द मृतण्ड में जो ऋकार है उस ऋकार के स्थान पर आर वृद्धि होकर म्+आर्+तण्ड+अ् बना। म में आर् का आ तथा र् का त के उपर चले जाने पर मार्तण्ड अ बना। उसके बाद यस्येति च सूत्र सें ड में अकार का लोप होकर मार्तण्ड+अ बना। वर्ण सम्मेलन होकर मार्तण्डः प्रयोग सिद्ध होता है।

40 - ओमाडोश्च 6/1/ 95// पररुप विधायक विधि सूत्र-

ओमि आडि चात्परे पररुपम् एकादेशः स्यात।
शिवायों नमः। शिव एहि।

अर्थ- अवर्ण से ओम अथवा आङ् के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान में पररुप एकादेश होता है।

शिवायों नमः - शिवाय+ओम् नमः यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर वृद्धिरेचि से वृद्धि प्राप्त हुई। उसे बाधकर ओमाडोश्च सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है कि अ वर्ण से ओम् अथवा आङ् पर में हों तो पररुप एकादेश होता है। यहाँ पर अवर्ण है। शिवाय मे य मे अ उस अकार के पर मे ओम् शब्द का ओकार है। इस लिये अ+ओ इन दोनो वर्णो के स्थान पर पररुप अर्थात पर जैसा वर्ण पूर्व में ओ होकर शिवाय+ओ+म् बना। वर्ण सम्मेलन होकर शिवायोम् नमः बना। मकार को अनुस्वार होकर शिवायों नमः प्रयोग सिद्ध होता है।

41- अतिदेश सूत्र

अन्तादिवच्च 6/1/ 85//

योऽयमेकादेशः स पूर्व स्यान्तवत् परस्यादिवत्। शिवेहि।

अर्थ- पूर्व और पर के स्थान में जो यह एकादेश होता है वह पूर्ववर्ती वर्ण समदाय उसके अन्त्य के समान होता है। और परवर्ती वर्णसमुदाय के लिये उसी के आदि के समान होता है।

जैसे- एकादेश पूर्व और पर के स्थान में होता है। उस एकादेश को अन्त या आदि के समान मानना पड़े तो कैसे माना जाय क्योंकि एकादेश होकर न पूर्व के समान रहा, न पर के समान, अर्थात अखण्ड है। बलवान होने से आद् गुणः से गुण होकर शिव+एहि बना। एहि का जो एकार है, वह आ और इ के स्थान पर गुण एकादेश होकर बना हुआ है। उस एकार को अन्तादिवच्च सूत्र से पूर्वान्तवद् भाव हुआ है। अर्थात् एकादेश होने से पहले पूर्व का आ और पर का आदि वर्ण इ था। अब हम उस ए को आ मानकर ओमाङोश्च सूत्र से पररुप करना हो तो ए को आ भी

माना जा सकता है ? और ए को इ भी माना जा सकता है? पूर्वाश्रित कार्य करने में अन्त के समान हो गया है। आ+इ में अन्त में आ था। आ यह आङ है। उसे मानकर होने वाला पररुप हो गया है। पूर्व रुप पूर्व और पर के स्थान में होता है। शिव+एहि यहाँ पूर्व में अकार तथा पर में एहि का एकार है । अतः दोनों के स्थान में पूर्वरुप एकादेश ए होकर शिव् + ए + हि बना । वर्ण सम्मेलन होकर शिवेहि सिद्ध होता है । यदि अन्तादिवच्च सूत्र न होता तो शिव+एहि में वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि होकर शिवेहि ऐसा अनिष्ट प्रयोग बनने लगता । पररूप सन्धि का अन्य उदाहरण-

विग्रह	आदेश	सन्धि
शक+अन्धुः	शक्+अ+न्धुः	शकन्धुः
कर्क+अन्धुः	कर्क+अ+न्धुः	कर्कन्धुः
कुल+अटा	कुल्+अ+टा	कुलटा
मनस्+ईषा	मन्+ई+षा	मनीषा

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखना चाहिये ।

पररुप सन्धि समाप्त होता है । अब इसके बाद दीर्घ सन्धि प्रारम्भ होगा ।

दीर्घ सन्धि के सूत्र एवं उदाहरण

सवर्णदीर्घ विधायक विधि सूत्रम्

42अकः सवर्णे दीर्घः 6/1/101//

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोदीर्घ एकादेशः स्यात। दैत्यारिः /श्रीशः/विष्णूदयः/ होतृकारः।

अर्थ- अक् से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पूर्व और पर के स्थान में दीर्घ एकादेश होता है। अक् प्रत्याहार में अ,ई,उ,ऋ,लृ,ये पाँच वर्ण आते हैं। इनसे परे यदि इनका कोई सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो इन दोनों के स्थान पर दीर्घ एकादेश होता है। जिस प्रकार अ+अ = आ,इ+इ = इ,उ+उ = ऊ,ऋ+ऋ =ॠ आदि । दीर्घ अच् तो यहाँ पर बहुत है, तथापि स्थानेऽन्तरतम्ः सूत्र की सहायता से वही दीर्घ लिया जाता है जो इन स्थानियों के तुल्य होता है। क्योंकि दीर्घ अच आ,ई,ऊ,ॠ,ए,ऐ,ओ,औ, ये सभि दीर्घ प्राप्त होते है। स्थान से साम्य सवर्ण दीर्घ ही होता है।

दैत्यारिः- दैत्य + अरिः यहाँ पर दैत्य में जो यकार है उस यकार में जो अकार है वह अक् प्रत्याहार का वर्ण है । उस अक् प्रत्याहार सें पर में अच् प्रत्याहार (अ, इ, उ,ऋ,लृ,ए,ओ,ऐ,औ) का वर्ण है । अरिः का अकार, अर्थात अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण है, अरिः का अकार । इन दोनों अकार के स्थान पर सवर्ण दीर्घ एकादेश होकर दैत्य् आ रिः बना । वर्ण सम्मेलन होकर दैत्यारिः प्रयोग सिद्ध होता है । ध्यान रहे की यहाँ पर दैत्य्+अरिः में आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ हुआ है ।

श्रीशः- श्री+ईशः यहाँ पर इको यणचि सूत्र से यण प्राप्त था। उस यण् को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घ सूत्र लगा । सूत्र कहता है कि अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पूर्व और पर दोनों के स्थान में सवर्णी दीर्घ एकादेश होता है। यहाँ पर अक् प्रत्याहार का वर्ण है। श्री में ई तथा पर में सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण है ईशः का ईकार। अतः ई+ई दोनों वर्णो के

स्थार पर सवर्णी दीर्घ ई एकादेश होता है होकर श्र् ई+शः बना। वर्ण सम्मेलन होकर श्रीशः प्रयोग सिद्ध होता है ।

विष्णुदयः- विष्णु + उदयः यहाँ पर भी इको यणचि सूत्र से इक् प्रत्याहार का वर्ण है, विष्णु में ण् में उ तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है उदय का उकार अतः इस सूत्र से यण् प्राप्त था उस यण् को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है कि अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पूर्व और पर दोनों के स्थान में पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश होता है। यहाँ पर अक् प्रत्याहार का वर्ण है। विष्णु में उकार तथा पर में सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण है उदय का उकार। अतः ऊ इन दोनों वर्णो के स्थान पर सवर्ण दीर्घ एकादेश होकर विष्ण्+ऊ+दयः बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्ण उदयः प्रयोग सिद्ध होता है।

होतृकार - होतृ + ऋकारः यहाँ पर इको यणचि सूत्र से यण् प्राप्त था उस यण् को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र लगा । सूत्र कहता है कि अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पूर्व पर के स्थान में सवर्ण दीर्घः एकादेश होता है। यहाँ पर अक् प्रत्याहार का वर्ण है होतृ में ऋकार तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है, ऋकारः का ऋकार, अतः ऋ तथा ऋ इन दोनों वर्णो के स्थान पर सवर्ण दीर्घ एकादेश होकर होत्+ॠ+कारः बना। वर्ण सम्मेलन होकर होतृकारः प्रयोग सिद्ध होता है। अक् प्रत्याहार में अ,इ,उ,ऋ,ऌ,इन में पाँच वर्ण आते है इन पाँचों वर्णो में से अ,इ,उ,ऋ,चारों वर्णो का क्रमशः उदाहरण दिया गया किन्तु पाँचवा वर्ण ऌ है उसका उदाहरण नहीं दिया गया क्यौंकि ऌ वर्ण का दीर्घ नहीं होता है । सिद्धान्त कौमुदी में विशेष प्रकार की व्याख्या की गयी है ।

दीर्घ सन्धि का उदाहरण

विग्रह	आदेश	सन्धि
दैत्य+अरिः	दैत्य्+आ+रिः	दैत्यारिः
विद्या+आलयः	विद्य्+आ+लयः	विद्यालयः
अत्र+आगच्छति	अत्र्+आ+गच्छति	अत्रागच्द्दति
महा+अवकाश	मह्+आ+वकाशः	महावकाशः
कदा+आगतः	कद्+आ+गतः	कदागतः
तुल्य+आस्य	तुल्य+आस्य	तुल्यास्य
न अस्ति	न अस्ति	नास्ति
दधि+इन्द्रः	दध्+ई+न्द्रः	दधीन्द्रः
कवि+इन्द्रः	कव्+ई+न्द्रः	कवीन्द्रः
महती+इच्छा	महत्+ई+च्छा	महतीच्छा
सती+ईशः	सत्+ई+शः	सतीशः
विष्णु+उदयः	विष्ण्+ऊ+दयः	विष्णूदयः
भानु+उदयः	भान्+ऊ+दयः	भानुदयः
पशु+उत्सवः	पश्+ऊ+त्सवः	पशूत्सवः

विधु+उदयः	विध्+ऊ+दयः	विधूदयः
कारु+उत्तम	कार्+ऊ+त्तम	कारुत्तम
होतृ+ऋकार	होत्+ॠ+कार	होतृकारः
कर्तृ+ऋद्धि	कर्त्+ॠ+द्धि	कर्तृद्वि
कर्तृ+ऋणि	कर्त्+ऋ+णि	कर्तृणि

इस प्रकार दीर्घ सन्धि का सूत्र व्याख्या विशेष प्रकार से किया गया है। उसे ध्यान पूर्वक अध्ययन करें, तथा उदाहरण को भी ध्यान पूर्वक स्मरण करे। इस प्रकार दीर्घ सन्धि समाप्त हुआ।

अब यहाँ पर से पूर्व रुप एकादेश सन्धि प्रारम्भ की जा रही है ।

पूर्व रुप सन्धि का विधान करने वाला सूत्र

43 - एङ पदान्तादति 6/1/109//

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरुपमेंकादेशः स्यात् / हरेऽव/विष्णोऽवः/

अर्थ- पदान्त एङ् से अकार के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान में पूर्वरुप एकादेश होता है ।

जैसे - एङि पररुपम् यह सूत्र पीछे पढ़ा गया है । यह सूत्र पररुप करता है । दोनो का अर्थ एक ही है । किन्तु पररुप करता है । और एक पूर्वरुप करता है । पररुप का अर्थ होता है । पर जैसा सदृश वर्ण पूर्व में होता है। और पूर्व रुप का अर्थ होता है । पूर्व जैसा वर्ण पर मे हो जाता है। यह सूत्र कहता है। कि पदान्त एड़ प्रत्याहार से ऐ,ओ,से हस्व अकार के परे होने से पूर्व और पर के स्थान में पूर्वरुप एकादेश होता है। जैसे ए + अ यहाँ पर एड़् प्रत्याहार का वर्ण पूर्व में है ए, तथा हस्व अकार पर में है अ,अतः ए,ओ, के स्थान पर पूर्वरुप एकादेश होता है । अर्थात् ए + अ = ए हो जाता है। इसी विधि को पूर्वरुप विधि कहते है । इसके द्वारा पूर्वरुप होने पर अकार के स्थान पर 'ऽ' इस चिन्ह को लगाने की परम्परा रही है । जिसको हम अवग्रह या खण्ड़ाकार कहते है। यद्यपि इस चिन्ह का विधान किसी सूत्र के द्वारा नही होता है । फिर भी इस चिन्ह को लगाकर अकार का संकेत संस्कृत भाषा मे प्रचलित है । इस चिन्ह को प्रयोग करे या न करे इसकी कोई अनिवार्यता नही है । इस सूत्र को पढ़ने के पहले एड़ि पररुप सूत्र का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है । अब सूत्र का उदाहरण देखे ।

हरऽव -हरे + अव् (हरे जो शब्द है । वह सम्बोधन एक वचन का रुप है। सम्बोधन होने के कारण यह पदान्त है।) यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा एच् प्रत्याहार का वर्ण ए के स्थान पर अय् आदेश होना चाहिये क्योकि ए के बाद पर मे अच् प्रत्याहार का वर्ण अव का अकार है। अतः एचोऽयवायावः सूत्र को बांधकर सूत्र लगा एड़् पदान्तादति यह सूत्र कहता हैं कि पदान्त एड़् से हस्व अकार के परे रहने पर पूर्व-पर दोनो के स्थान में पूर्वरुप एकादेश होता है। यहाँ पदान्त एड़् है हरे एकार, पर में है अव का अकार, अर्थात ए+अ इन दोनों वर्णो के स्थान पर पूर्वरुप एकादेश होता है। पूर्व जैसा वर्ण पर में होना यहाँ पर पूर्व में जो वर्ण ए है। वही वर्ण पर में हो होकर हर्+ए+व बना। वर्ण सम्मेलन होकर हरेव प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर ध्यान देना है कि परम्परा के अनुसार अकार के स्थान पर ऽ होकर हरेऽव प्रयोग सिद्ध होता है।

विष्णोऽव - यहाँ पर सभी प्रक्रिया हरेऽव के समान होनी हैं केवल अन्तर इतना होता है। कि

वहा पर हरेऽव में एकार अकार होने से पूर्व रुप दोनों वर्णो के स्थानों में एकार हुआ। यहाँ पर पूर्वरुप ओकार होता है। किस प्रकार होता है उसको जाने । विष्णो + अव यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश प्राप्त है। इस सूत्र को बांधकर एङ् पदान्तादति सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है। कि पदान्त एङ से हस्व अकार के परे रहने पर पूर्व पर दोनो के स्थान पर प पर्वरुप एकादेश होता है। यहाँ पर पदान्त एङ् है विष्णो का ओ तथा पर में ह्स्व अकार है अव का अकार। अतः ओ$अ इन दोनो वर्णो के स्थान पर पूर्वरुप एकादेश होकर विष्ण् ओ+व बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णोऽव प्रयोग सिद्ध होता है। तथा अ के स्थान पर परम्परानुसार ऽहोकर विष्णोऽव प्रयोग सिद्ध होता है। हरे!विष्णो!ये दोनो सम्बोधन एकवचन का रुप है। और अव् क्रिया पद है । सुबन्त होने के कारण हरे और विष्णो दोनो पद है । और एकार ओकार दोनो पद के अन्त में है ।

पूर्वरुप सन्धि के उदाहरण सहित विग्रह एवं सन्धि।

विग्रह	आदेश	सन्धि
हरे+अव	हर+ए+व	हरेऽव
ते+अत्र	त+ए+त्र	तेऽत्र
वने+अस्मिन्	वन्+ए+स्मिन	वनेऽस्मिन
गृह+अस्ति	गृह+ए+स्ति	गृहेऽस्मिन
स्थाने+अन्तरमः	स्थान्+ए+न्तरतमः	स्थानेऽन्तरतमः
उद्याने+अस्तु	उद्यान्+ए+स्तु	उद्यानेऽस्तु
विष्णो+अव	विष्ण्+ओ+व	विष्णोऽव
नमो+अस्तु	नम्+ओ+स्तु	नमोऽस्तु

इसी प्रकार पूर्व रुप सन्धि का अन्य उदाहरण समझिये । इस प्रकार पूर्वरुप सन्धि सम्पूर्ण हुआ।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

1. वृद्धि संज्ञा किस सूत्र से होती है?
2. वृद्धि संज्ञक कितने वर्ण होते है?
3. कृष्णैकत्वम् में कौन सा विग्रह है?
4. अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् इस वार्तिक का उदाहरण क्या है?
5. सुखेन ऋतः में कौन सा समास है?
6. प्रार्णम् में कौन सा विग्रह है?
7. क्रिया के योग में प्र आदि संज्ञक होते है?
8. अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातुं परे हो तो पूर्व पर केस्थान में क्या होता है?
9. टि संज्ञा किस सूत्र से होती है ?
10. मनीषा का विग्रह क्या है ?
11. अवर्ण से ओम् अथवा आङ् पर में हो तो पूर्व पर दोनों को स्थान में क्या आदेश होगा?

12. अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् पर में हो तो पूर्व पर दोनों केस्थान में क्या आदेश होता है?
13. दैत्यारिः किस सूत्र का उदाहरण है?
14. दैत्यारिः का विग्रह क्या होगा ?
15. पूर्वरूप एकादेश किस सूत्र से होता है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. उपैधते में कौन सी सन्धि है:-
(क) वृद्धि (ख) गुण (ग) दीर्घ (घ) पररूप
2. सुखार्तः में कौनसी सन्धि है -
(क) गुण (ख) दीर्घ (ग) वृद्धि (घ) पूर्वरूप
3. उपसर्ग कितने है -
(क) दश (ख) तीन (ग) बाइस (घ) चार
4. भूवादयोधातवः सूत्र से होती है:-
(क) उपसर्ग संज्ञा (ख) धातु संज्ञा (ग) पररूप संज्ञा (घ) पूर्वरूप संज्ञा
5. एङिपररूपम् सूत्र से होता है:-
(क) दीर्घ (ख) गुण (ग) पररूप (घ) वृद्धि
6. एङिपररूपम् सूत्र का उदाहरण है:-
(क) रमेश (ख) उपैधते (ग) उपैति (घ) प्रेजते
7. शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् इस वार्तिक का उदाहरण है:-
(क) शकन्धुः (ख) उपोषति (ग) उपेन्द्रः (घ) उपैति
8. दैत्यारिः में सन्धि हुई है -
(क) गुण (ख) वृद्धि (ग) दीर्घ (घ) पररूप
9. अकः सवर्णेदीर्घः सूत्र का उदाहरण है -
(क) शिवेहिः (ख) कृष्णैकत्वम् (ग) लाकृतिः (घ) श्रीशः
10. एङःपदान्तादति सूत्र का उदाहरण है:-
(क) गंगोदकम् (ख) दैत्यारिः (ग) विष्णुदयः (घ) हरेऽव

5.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप वृद्धि सन्धि, पररूप सन्धि, दीर्घ सन्धि, पूर्व रूप सन्धि के विषय में भली भांति परिचित हो गये हैं। इसके बाद उपसर्ग बाइस प्रकार के होते है इसके विषय में भली भांति परिचित हुये। इसके साथ भूवादयोधातवः इस सूत्र से धातु संज्ञा होती है। पूर्व और पर के स्थान में जो यह एकादेश होता है वह पूर्ववर्ती वर्ण समदाय उसके अन्त्य के समान होता है। और परवर्ती वर्णसमुदाय के लिये उसी के आदि के समान होता है। जैसे- एकादेश पूर्व और पर के स्थान में होता है। उस एकादेश को अन्त या आदि के समान मानना पड़े तो कैसे माना जाय क्योंकि एकादेश होकर न पूर्व के समान रहा, न पर के समान, अर्थात अखण्ड है। बलवान होने से आद् गुणः से गुण होकर शिव+एहि बना। एहि का जो एकार है, वह आ और इ के स्थान

पर गुण एकादेश होकर बना हुआ है। उस एकार को अन्तादिवच्च सूत्र से पूर्वान्तवद् भाव हुआ है। अर्थात् एकादेश होने से पहले पूर्व का आ और पर का आदि वर्ण इ था। अब हम उस ए को आ मानकर ओमाङोश्च सूत्र से पररुप करना हो तो ए को आ भी माना जा सकता है ? और ए को इ भी माना जा सकता है? पूर्वाश्रित कार्य करने में अन्त के समान हो गया है। आ+इ में अन्त में आ था। आ यह आङ है। उसे मानकर होने वाला पररुप हो गया है। पूर्व रुप पूर्व और पर के स्थान में होता है। ऐसा करने पर शिवेहि रूप बन जाता है। अत: इस इकाई में सिखे हुये सूत्रोंके आधार पर विभिन्न प्रयोगों की सिद्धियॉ बता सकेंगे।

शब्दावली

शब्द	अर्थ
उपैति	पास जाता है
उपैधते	पास वढ़ता है
प्रष्ठौहः	प्रष्ठवाह का
प्रौहः	उत्तम तर्क या उत्तम तर्क करने वाला
प्रौढः	वढ़ा हुआ या अधेड़
प्रौढ़िः	प्रौढ़ता या शेरवीं
प्रैषः	अच्छा भेजने वाला
प्रैष्यः	भेजने योग्य सेवक
प्रार्णम्	अधिक व उत्तम ऋण
वत्सतरार्णम्	वछड़े के लिए ऋण
कम्बलार्णम्	कम्बल के लिए ऋण
वसनार्णम्	कपड़े का ऋण
ऋणार्णम्	ऋण चुकाने के लिए ऋण
दशार्णः	दश प्रकार के जल वाला देश
सुखार्तः	सुख से प्राप्त
कृष्णैकत्वम्	कृष्ण की एकता
गंगौघः	गंगा का प्रवाह
देवैश्र्यम्	देवों का ऐश्वर्य
कृष्णौत्कठयम्	कृष्ण के विषय में उत्कष्ठा
प्राच्छति	अच्छी तरह से जाता है।
प्रेजते	अत्यन्त चमकता है।
उपोषति	जलता है।
शकन्धुः	शनायक देश कूप
कर्कन्धु	कर्क नामक कोई राजा, उसका कूप
मनीषा	वृद्धि

मार्तण्डः	सूर्य
परमर्तः	मुक्त
शिवायों नमः	शिव जी को नमस्कार है
शिवेहि	हे शिव आइये
दैत्यारिः	दैत्यों का शत्रु भगवान विष्णु
श्रीशः	लक्ष्मी का स्वामी = भगवान विष्णु
विष्णूदयः	विष्णु का उदय
होतृकार	होता का ऋकार
हरदेव	हे हरे रक्षा करो
विष्णोऽव	हे विष्णों रक्षा करो

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

1. (वृद्धि रादैच्)
2. तीन (आ, ऐ, औ)
3. कृष्ण + एकत्वम्)
4. (अक्षौहिणी सेना)
5. तृतीया तत्पुरूष)
6. प्र + ऋणम्)
7. (उपसर्ग संज्ञक)
8. (वृद्धि संज्ञा)
9. (अचोऽन्त्यादिटि)
10. (मनस् + ईषा)
11. (पररूप)
12. (सवर्णदीर्घ)
13. अकः सवर्णे दीर्घः)
14. दैत्य + अरिः)
15. (एङ: पदान्तादति)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. क)
2. (ग)
3. (ग)
4. (ग)
5. (घ)
6. (घ)

7. (क)
8. (ग)
9. (घ)
10. (घ)

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी
2. सिद्धान्तकौमुदी

5.8 उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी.- श्रीधरानन्द शास्त्री

5. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दीर्घ सन्धि कहाँ पर होती है ? सूत्र उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।
2.उपसर्ग कितने प्रकार के हैं। किन्हीं पॉच उपसर्गों का उल्लेख कर उदाहरणों की सिद्धिकरें।
3. तृतीया विभक्ति के वार्तिक की व्याख्या कीजिये।
4.पूर्वरूप संधि को उदाहरण सहित समझाइये।

इकाई - 6: सर्वत्र विभाषा गोः से ऋत्यकः सूत्र तक

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह छठी इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने दीर्घ, पूर्वरूप आदि संधियों के सूत्र व उनके उदाहरणों की सिद्धि का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में लौकिक और वैदिक प्रयोगों में प्रकृतिभाव करने के नियम के साथ - साथ सर्वादेश विधान सहित दूर से बुलाने व प्रगृह्य, निपात आदि संज्ञाओं से संबंद्ध सूत्रों व उनके उदाहरणो का वर्णन किया गया है।

अनेक अल् वाला आदेश शित् होकर सम्पूर्ण के स्थान पर होता है। स्फोटायन के मत में अवङ् आदेश होता है। अच् प्रत्याहार के परे होने पर प्लुत और प्रगृह्य को प्रकृतिभाव हो जाता है। अ सवर्ण अच् प्रत्याहार का वर्ण यदि बाद में आता हो तो पदान्त में इक् रहने पर उसी को ह्रस्व हो जाता है। समास में यदि अ सवर्ण अच् प्रत्याहार का वर्ण बाद में हो तो पदान्त इक् को ह्रस्व नहीं होता।

अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रकृतिभाव सन्धि को समझते हुए उसकी महत्ता को भी बता सकेंगे और इस इकाई में आये हुये सूत्रों व उदाहरणों की सिद्धि कर सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- प्रकृतिभाव संधि की परिभाषा बतायेंगे।
- सर्वत्र विभाषा गोः इस सूत्र का प्रयोग कहाँ पर होता है, इसे समझायेंगे ।
- अवङ् स्फोटायनस्य सूत्र का प्रयोग कहाँ पर होता है, इसे भी बतायेंगे
- ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम् सूत्र का उपयोग समझायेंगे ?
- निपात संज्ञा कहां पर होती है उसका प्रयोजन क्या है, इसे सिद्ध करेंगे
- ऋत्यकः सूत्र का प्रयोग कहाँ पर होता है इसका उदाहरण क्या है,उल्लेख करेंगे

6.3 प्रकृतिभाव -सन्धि

44 सर्वत्र विभाषा गोः 6/1/122//

लोके वेद चैङ्न्तस्य गोरतिवा प्रकृति भावः पदान्ते । गो अग्रम!गोऽग्रम!एङ्न्तस्य किम्!चित्रग्वग्रम! पदान्ते किम्। गोः।

अर्थः- लौकिक एवं वैदिक प्रयोगो में एङन्त गो शब्द को अत् ह्रस्व अकार परे रहने पर विकल्प से प्रकृति भाव होता है। पदान्त में।

गो अग्रम गो+अग्रम (गवाम्, अग्रम्, ऐसा यहाँ पर षष्ठी तत्पुरुष समास होता है। अतः समास होने के बाद पदत्व विद्यमान रहता है।) यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश प्राप्त था। उसे बांधकर एङः पदान्तादति इस सूत्र से पूर्वरुप प्राप्त था। उस पूर्वरुप को भी बाधकर सूत्र लगा।

सर्वत्र विभाषा गोः। गो शब्द गो यह पद है। और पदान्त एङ् (ए + ओ) है गो में ओकार। उस ओकार से परे ह्रस्व अकार है अग्रम का अकार।अतः प्रकृति भाव हुआ।प्रकृति भाव का अर्थ है जिस स्थिति में था वैसा ही रहना। इसी को प्रकृति भाव कहते है। गो अग्रम ज्यो का त्यो रहा। प्रकृति भाव विकल्प से होता है। अतः प्रकृति भाव जिस पक्ष में नही होगा उस पक्ष में एड़ पदान्तादति सूत्र से पूर्वरुप होकर गोअग्रम् रुप सिद्ध होता है।

एड़न्तस्य किम् चित्रग्वग्रम्ः-यहाँ पर प्रश्न करते है कि सर्वत्र विभाषागोः इस सूत्र के वृद्धि में एड़न्त क्यो पढ़ा गया न पढ़ते तो क्या हानि होती? यदि सूत्र में एङन्त नही पढ़ते तो सूत्र का अर्थ होता-लोक अथवा वेद में गो शब्द को विकल्प से प्रकृतिभाव होता है। पदान्त में। ऐसा अर्थ होने पर चित्रगु अग्रम् यहाँ पर भी प्रकृतिभाव होने लगता क्योकि चित्रगु में एड़्न्त अर्थात ए ओ नही पढ़ा गया है। इसलिये एड़्न्त गो शब्द को ही प्रकृति भाव होगा। जहा पर एड़न्त गो शब्द नही है उनका प्रकृति भाव नही होगा। चित्रगुअग्रम् यहाँ पर समास करते है चित्रा गावो यस्य,चित्रा जस् गो जस बहुब्रीहि समास होकर चित्रगो बना। तथा गो को ह्रस्व करके चित्रगु बना। अतः यहाँ पर गो शब्द तो है। पर एड़्न्त गो शब्द नही है। यदि सूत्र में एड़्न्त गो शब्द यही पढ़ा गया होता तो चित्रगु अग्रम ऐसा अनिष्ट रुप बनने लगता इसलिये सूत्र में एड़्न्त गो शब्द पढ़ना आवश्यक है। चित्रगु+ अग्रम यहाँ पर इकोयणचि सूत्र से यण् होकर चित्रगव्+अग्रम बना। वर्ण सम्मेलन होकर चित्रग्वग्रम प्रयोग सिद्ध होता है।

पदान्ते किम् गोः यहाँ पर दूसरा शंका उत्पन होता है। कि सर्वत्र विभाषा गोः सूत्र में पदान्त क्यो पढ़ा गया। इसकी आवश्यकता क्या थी? यदि सूत्र में पदान्त शब्द को नहीं पढ़ा गया होता तो इसका अर्थ होता-लोक अथवा वेद में एङन्त गो शब्द को विकल्प से प्रकृति भाव हो ऐसा अर्थ होने पर गो शब्द में भी प्रकृति भाव होने लगेगा जिससे अनिष्ट रुप बनने लगता है। गो शब्द के षष्ठी विभक्ति एकवचन की विवक्षा में ड़स प्रत्यय होकर गो+ड़्स् बना। ङकार की लशक्वतद्धिते सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपःसे लोप होकर गो+अस् बना। जिस शब्द के अन्त में सुप् प्रत्यय हो उसे सुवन्त कहते है। अर्थात प्रकृति प्रत्यय जब दोनो एक साथ मिलते है। तो पदान्त बनते है। यहाँ पर गो शब्द प्रकृति है तथा ड़्स् के स्थान पर जो अस् आया है। वह प्रत्यय है। अतः प्रकृति प्रत्यय जब तक दोनो एक साथ नही मिलते तब तक पदान्त नही बन सकता। अतः यहाँ पर गो शब्द पदान्त नही है। यदि सूत्र मे पदान्त नही पढ़ा गया होता तो गो शब्द को प्रकृति भाव होकर गो अस् ऐसा अनिष्ट रुप बनने लगता। उस अनिष्ट को रोकने के लिए सूत्र में पदान्त शब्द पढ़ा गया। गो + अस् यहाँ पर प्रकृति भाव नही हुआ। अतः यहाँ पर। ड़्सिड़सोश्च सूत्र से पूर्वरुप होकर गोस् बना। तथा स्कार को रुत्व विसर्ग होकर गोः शब्द की सिद्दि होती है।

सर्वादेश विधान करने वाला परिभाषा सूत्र।

45- अनेकाल् शित् सर्वस्य 1/1/55// इति प्राप्ते

अर्थ- अनेक अल् वाला आदेश और शित् सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश होते है।

अनेक+अल्=अनेकाल। जिस आदेश में अनेक अल् अर्थात एक से अधिक अल् हौ उसे अनेकाल कहा जाता है। अल् अर्थात् वर्ण होंता है जिस में स्वर तथा व्यंजन सभी वर्ण आते है।

शित् किसे कहते है? जिस आदेश में शकार की इत्संज्ञा हुई हो उसे शित् कहते है। जब किसी अंग आदि के स्थान पर किसी सूत्र से आदेश का विधान किया जाता हैं और उसमें स्पष्ट रुप से यह निर्देश नहीं दिया गया है कि आदेश सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर हो या स्थानी के अन्तिम-वर्ण या आदि वर्ण, के स्थान पर हो। इस नियम को निश्चित करने के लिये यह परिभाषा सूत्र बनाया गया । कि जिस आदेश में अनेक अल् अर्थात् वर्ण हो तो सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है। इसी प्रकार जिस आदेश में शकार कि इत्संज्ञा हुई हो तो वह सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर आदेश होता है।

अनेकाल आदेश का उदाहरण -

रामैः - राम शब्द से तृतीया विभक्ति बहुवचन विवक्षा में भिस प्रत्यय होकर रामभिस् बना। अतो भिस् 'ऐस' सूत्र से भिस् के स्थान में ऐस् आदेश होता है। अब यहाँ पर शंका होती है कि ऐस् जो आदेश करना है वह भिस् के किसी एक वर्ण के स्थान पर हो कि सम्पूर्ण भिस् के स्थान पर ऐस् हो। इस शंका के निवारण के लिये यह सूत्र बनाया गया है कि जिस आदेश में अनेक अल् हो वह सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है। यहाँ पर ऐस् आदेश है वह अनेक अल्(वर्ण)है। इस लिये यह आदेश सम्पूर्ण भिस् के स्थान पर इस परिभाषा सूत्र के द्वारा आदेश होकर राम+ऐस् बना वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि होकर रामैस् बना। तथा संकार को रुत्व विसर्ग होकर रामैः प्रयोग सिद्ध होता है। उसी प्रकार शित् का उदाहरण भी समझना चाहिए।

अन्य आदेश का विधान करने वाला परिभाषा सूत्र-

46 ङिच्च 1/1/ 53// ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात्।

अर्थ- ङित् आदेश अनेकाल होने पर भी अन्त्य के ही स्थान पर होता है।

यह सूत्र अनेकाल शित् सर्व का बाधक है आदेश अनेकाल भी हो और ङित् भी होतो अर्थात आदेश में ङकार की इत्संज्ञा हुई हो तो भी वह आदेश सभी के स्थान पर न होकर केवल अन्त्य अल् वर्ण के ही स्थान पर होता है। अर्थात् स्थानी के जो अन्त्य वर्ण उसी वर्ण के स्थान पर होता है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि आदेश अनेकाल हो या न हो यदि ङित् है तो अन्त्य वर्ण के ही स्थान पर होगा इसका अवङ् आदेश विधायक विधि सूत्र

47 अवङ् स्फोटायनस्य 6/1/123//

पदान्ते एडन्तस्य गोरवङ वाऽचि। गवाग्रम्, गोऽग्रम्। पदान्ते किम्? गवि।,

अर्थ- पदान्त में एडन्त तदन्त गो शब्द इसको अच् परे रहने पर विकल्प से अवङ आदेश होता है।'स्फोटायन' पाणिनि के पूर्ववर्ती व्याकरण के आचार्य होचुके है। कहतें है कि ये वैयाकरणों में प्रसिद्ध स्फोटतत्व के उपज्ञाता थे। इस सूत्र में पाणिनी ने उन के मंत्रो का उल्लेख किया है। यह अवङ आदेश स्फोटायन आचार्य के मत में होता है अन्य आचार्य के मत में नहीं होता है। अतः अवङ आदेश विकल्प से होता है।अवङ् से ङकार की हलन्त्यम्'सूत्र से इत्संज्ञा होती है तथा तस्य लोपः से लोप होता है। केवल अव ही बचता है। ङकार ही उत्सज्ञा होने के कारण यह आदेश ङित् है। ङित् होने से अवङ् आदेश अन्त्य वर्ण गो के ओकार के स्थान पर आदेश होता है।

गवाग्रम- गो ऽग्रम। गवाम् अग्रम लौकिक विग्रह तथा गो+आम् अग्रम् समास होकर तथा विभक्ति का लोप होकर के गो+अग्रम ऐसा प्रयोग बना। यहाँ पर एचोऽयवायावः से अवादेश प्राप्त है। उसको बाधकर एङ पदान्तादति सूत्र से पूर्वरुप प्राप्त है। उसको भी बाधकर सर्वत्र विभाषा गोः सूत्र से प्रकृति भाव प्राप्त है। उसको भी बाधकर सूत्र लगा- अवङ स्फोटायनस्य। आय विभक्ति का लुप्त होने पर गो का ओकार पदान्त है। अत गो का ओकार पदान्त होने से गों के ओकार के स्थान में अवङ् आदेश विकल्प से होगा। ग् अवङ्+अग्रम् बना। ङकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोप से लोप होकर ग्+अव+अग्रम बना। ग में अकार मिलकर गव+अग्रम बना। अकःसवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्ण दीर्घ होकर गवाग्रम् प्रयोग सिद्ध होता है। जिस पक्ष में अवङ आदेश नही होगा। उस पक्ष में एङ पदान्तादति सूत्र में पूर्वरुप होकर गोऽग्रम् प्रयोग सिद्ध होता है। अतः अवङ आदेश पक्ष में गवाग्रम तथा अवङ अभाव पक्ष में गोऽग्रम प्रयोग सिद्ध होता है।

पदान्ते किम् ? अब यहाँ पर प्रश्न उत्पन होता है। कि अवङ सपोटायनस्य सूत्र में पदन्त क्यो पढ़ा गया ? उतर देते है। कि पदन्त नही पढ़ा गया होता तो पदान्त अपदान्त दोनो जगह अवङ आदेश होता। पदान्त में अवङ् आदेश करना तो अनिवार्य है। अपदान्त में अवड़ आदेश करना अनिवार्य नहीं है यथा गवि यह सप्तमी विभक्ति एंक वचन का रुप है सप्तमी विभक्ति एक वचन का रुप है सप्तमी में गो शब्द से ड़ि. प्रत्यय होकर तथा ड.कार की इत्संज्ञा होकर गो+ इ बना। गवि यह पुरा पद है। किन्तु गो+इ में यह पुरा पद नही है। क्योकि प्रकृति प्रत्यय जब दोनो एक साथ मिलता है। तो पदान्त बनता है। यहॉ पर गो प्रकृति है। इ प्रत्यय है। अतः गो + इ यह अपदान्त है। अपदान्त होने से अवङ् आदेश नही होगा। जब अवङ् आदेश नही होगा। एचोऽयवायाव सूत्र से गो के स्थान में अव् आदेश होकर ग् + अव् + इ बना। वर्ण सम्मेलन होकर गवि यह प्रयोग सिद्ध होता है। इस लिए पदान्त ग्रहण किया गया।

अवङ् आदेश विधायक विधि सूत्र

4.8 इन्द्रे च 6/91/120//

गोरवङ् स्यात इन्द्रे। गवेन्द्र

अर्थ- इन्द्र शब्द परे होने पर एङन्त गो शब्द को अवङ आदेश होता है। अवड़ में ङकार की हलन्त्यम से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होता है ङित होने के कारण ङिच्च सूत्र की सहायता से अन्तिम् वर्ण पर गो के ओकार के स्थान पर होता है।

गवेन्द्र - गो + इन्द्रः यहाँ पर अवङ् स्फोटायनस्य सूत्र से अवङ आदेश प्राप्त था उसे बाधकर सूत्र लगा। इन्द्रे च। यह सूत्र कहता है कि इन्द्र शब्द पर में हो तो एङन्त गो शब्द को अवङ आदेश होता है। यहाँ पर एङन्त है गो का ओकार पर में इन्द्र शब्द है। इसलिये गो के ओकार, के स्थान में अवङ् आदेश होकर ग् अवङ् इन्द्र बना। ङ्कार की हलन्त्यम् सूत्र में से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर ग् अव+इन्द्रः बना। ग् में अव् का अकार को मिलने से गव +इन्द्रः बना। गव का अकार तथा इन्द्रः का इकार दोनों के स्थान में आद गुणः से गुण होकर गवेन्द्रः प्रयोग सिद्ध होता है।

प्लुत आदेश विधायक सूत्र

49. दूराद्धूते च 8/2/ 84//

दूरात्सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा स्यात् ।।

अर्थ- दूर से सम्बोधन करने में प्रयुक्त जो वाक्य है। उसके टि को विकल्प से प्लुत होता है सभी प्लुतों को विकल्प से माना जाता है । इस सूत्र में एक मात्रिक ह्रस्व को, द्विमात्रिक को दीर्घ तथा त्रिमात्रिक को प्लुत आदेश होता है । जब लोक में किसी का नाम लेकर पुकारते है तो स्वाभाविक रुप से प्लुत का ही उच्चारण करते है। जैसे- भो देवदत्त । प्लुत का एक प्रयोजन प्रकृति भाव भी होता है। जहाँ पर प्रकृति भाव प्राप्त नहीं है । वहॉ पर केवल उच्चारण काल में भेद होगा । प्लुत हो जाने के बाद उसको समझने के लिये प्रायः तीन का अंक लिखा जाता है। जैसे- हे राम 3। प्लुत करने का फल क्या है। इसका प्रयोजन अगले सूत्र में बताया जा रहा है।

प्रकृति भाव विधायक सूत्र

50. प्लुत् प्रगृहया अचि नित्यम् 6/1/125//

एते ऽचि प्रकृत्या स्युः । आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्चरति।

अर्थ- अच् प्रत्याहार के परे होने परे प्लुत और प्रगृह्य को प्रकृति भाव होता है। आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्चरति हे कृष्ण यहाँ पर आओ गाये चर रही है । आगच्छ कृष्ण + अत्र गौश्चरति यहाँ पर कृष्ण को सम्बोधन किया जा रहा है अतः कृष्ण में णकार में जो अकार है वह टि संज्ञक भी है । उसकी दुराद्धूते च सूत्र से टि को प्लुत् हो गया। उसके बाद सूत्र लगा-प्लुत प्रगृह्याचिनित्यम्। यह सूत्र कहता है कि प्लुत और प्रगृहय से अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो प्रकृति भाव होता है। यहाँ पर प्लुत् है कृष्ण में ण में अ तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। अत्र का अकार उसको प्रकृति भाव होता है। प्रकृति भाव का तात्पर्य है जिस स्थिति में था उसी स्थिति में रहना आगच्छ कृष्ण अत्र गौश्चरति जैसा था वैसा ही रहेगा।

प्रगृहय संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

51 इदू देद्द्विवचनं प्रगृह्यम् 1 /1/11//

इदूदेद्न्तं द्विवचन् प्रगृह्य संज्ञं स्यात्। हरी एतौ । विष्णू इमौ। गंङे अमू।

इकारान्त द्विवचनं उकारान्त द्विवचन और एकारान्त द्विवचन की प्रगृह्य संज्ञा होती है।

इकारान्त पुलिंग शब्द के द्विवचन में हरी रुप बनता है। तथा उकारान्त द्विवचन विष्णु शब्द के रुप में विष्णु रूप बनता है और आकारान्त स्त्रीलिंग गंगा शब्द के द्विवचन में गङे बनता है अर्थात् एकारान्त हो जाता है । इनकी प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद आगे अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो प्रकृति भाव होता है स्मरण कि प्लुत संज्ञा वैकल्पिक है। किन्तु प्रगृह्य संज्ञा नित्य है। अतः प्रकृति भाव वाला रुप एक ही बनता है।

हरी एतौ - यहाँ पर हरी शब्द इकारान्त द्विवचन का रुप है इकारान्त द्विवचन होने के कारण हरि शब्द कि इस सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हो गयी। प्रगृह्य संज्ञा होने का फल यह है कि प्लुत् प्रगृहया अचि नित्यम् से प्रकृति भाव होकर हरी+एतौ यहाँ पर प्रगृह्य संज्ञक वर्ण है हरी में ईकार प्रकृतिभाव सन्धि में इस सूत्र का उदाहरण विग्रह एवं सन्धि करें ।

विग्रह	आदेश	सन्धि
हरी+एतौ	हरी+एतौ	हरी एतौ
विष्णू +इमौ	विष्णू +इमौ	विष्णू इमौ
धने+इमे	धने+इमे	धने इमे
रमे+अत्र	रमे+अत्र	रमे अत्र
कुले+इमे	कुले+इमे	कुले इमे
नत्रे+अमृशति	नेत्रे+अमृशति	नेत्रे अमृशति
बालिके+अधीयाते	बालिके+अधीयाते	बालिके अधीयाते

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे।

प्रकृति भाव होकर ज्यौ का त्यौ स्थिति रहा अर्थात हरी एतौ ऐसा ही रहा। यदि प्रगृह्य संज्ञा प्रकृति भाव नहीं होता तो इकोयणचि से यण होकर हर्येतौ एसा अनिष्ट प्रयोग बन जाता।

विष्णू इमौ विष्णू +इमौ यहाँ पर इको यणचि से यण् प्राप्त है। उसको बाधकर सूत्र लगा- इदुदेद् द्विवचनम् प्रगृहयम्। इस सूत्र में उकारान्त द्विवचन है। विष्णू में ऊ उसकी प्रगृह्य संज्ञा हुई। उसके बाद सूत्र लगा प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्। यह सूत्र कहता है जिसकी प्रगृह्य संज्ञा हुई हो उस प्रगृह्य से पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो प्रकृति भाव होता है। विष्णू इमौ यहाँ पर प्रगृह्य संज्ञक वर्ण है। णू में ऊकार तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। इमौ का इकार। इस लिये यहाँ पर प्रकृति भाव हुआ अर्थात ज्यों का त्यों रहा कोई संन्धि नहीं हुई। विष्णु इमौ ऐसा ही रहा।

गङ्े अमू - गङे+ अमू यहाँ पर एकारान्त द्विवचन है गंगे का ए इसलिये द्विवचन् प्रगृह्यम् से प्रगृह्य संज्ञा हुई। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद सूत्र लगा प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् यह सूत्र कहता है कि प्रगृह्य संज्ञक वर्ण से पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो प्रकृति भाव होता है। यहाँ पर प्रगृह्य संज्ञक वर्ण है गङे में एकार तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। अम का उकार। अतः इसलिये प्रकृति भाव होकर गङे अम ज्यौ का त्यौ रहा। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे।

प्रगृह संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र -

52 - अदसोमात् 1/1/12//

अस्मात् परावीदू तौ प्रगृह्यौ स्तः। अमीईशाः। राम कृष्णा वमूआशते।

मात् किम् ? अमू केऽत्र।

अर्थ- अदस् शब्द के मकार से परे ईकारान्त ऊकारान्त प्रगृहय संज्ञक होते है। अदस् शब्द सर्वनाम है इसका तीनों लिगों में रुप चलता है।

पुलिंग रुप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमाः विभाक्ति	असौ	अमू	अमी
द्वितीया	-अमूम	अमू	अमूः
तृतीया।।	अमु	अमू भ्याम	अमीभिः

चतुर्थी	अमुमै स्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पंचमी।।	अमुस्मात्	अमीभ्यः	
षष्ठीः।।	अमुस्य	अमुयोः	अमीषाम्
सप्तमि	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

स्त्रीलिंग

प्रथमाः।।	असौ	अमू	अमू
द्वितीया	अमूम्	अमू	अमू:
तृतीया	अमुया	अमूभ्याम्	अमू भिः
चतुर्थि।।	अमुष्यौ	अमू भ्याम्	अमीभ्यः
पंचमी	अमुष्याः	अमू पभ्याम्	अमीभ्यः
षष्ठीः	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
सप्तमि।।	अमुष्याम्	अमुयोः	अम पषु

नपुसंकलिंग में

प्रथमाः	अदः	अमू	अमू वनि
द्वितीया	अदः	अमू	अमू पनि

शेष पुलिंग के समान चलता है।

अदस् शब्द के मकार से परे ईकारान्त ऊकारान्त पुलिंग में प्रथमा विभक्ति के बहुवचन तथा द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में और स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग में प्रथमा द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में ही प्राप्त होते है। इन में से स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग वाले इस सूत्र के उदाहरण नहीं मिलते है। क्योंकिं वहा पर इदूदेद्विवचन प्रगृह्यम् सूत्र से ही प्रगृह्य संज्ञा सिद्ध हो जाती है। केवल पुलिंग के अम प, अमी इन दो रुपो के लिये ही यह सूत्र बनाया गया है। उदाहरण यथा- अमी + ईशाः यहाँ पर पुलिंग में अदस् शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन विवक्षा में जस् प्रत्यय करने पर त्यदाघत्व पररुप जस् को शी'आदेश तथा गुण करने के बाद अ बदे। तथा एत् इद् बहुवचने सूत्र से ए को इकार तथा उकार का मकार होकर अमी प्रयोग सिद्ध होता है। इसके आगे ईशाः प्रयोग करने के पर अमी ईशाः बना। यहाँ पर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्ण दीर्घ प्राप्त था। उसको बाधकर अदसो मात् सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा होकर प्लुतप्रगृह्याचिनित्यम् से प्रकृति भाव होकर ज्यौ का त्यौ रहा कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

रामकृष्णावमूआसाते् यहाँ पर इको यणचि सूत्र से यण् प्राप्त था। उस यण् को बाधकर अदसो मात् सूत्र लगा। यहाँ पर अदस् सम्बन्धी मकार से अकार इसकी प्रगृह्य संज्ञा हुई। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृति भाव होता है। प्रकृति भाव अर्थात ज्यौ का त्यौ रहना उसमें कोई परिवर्तन न होना। रामकृष्णावमू आसाते् में कोई परिवर्तन नहीं हुई।
मात् किम् ? अमुकेऽत्र - यहाँ पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि सूत्र में मात् अर्थात म से परे ऐसा क्यो कहा गया है? क्योंकि मकार से अतिरिक्त अन्य किसी वर्ण से परे इकारान्त ऊकारान्त अदस् से तीनों लिंगो में कहीं नहीं पाये जाते। अतः मात् ग्रहण न करने से भी 'अमू , 'अमी' शब्दो की

प्रगृह्य संज्ञा होगी। इसका उत्तर यह है कि अमु केऽत्र। अर्थात मात का ग्रहण न करने से अमु केऽत्र प्रयोग में दोष आयेगा। तथाहि अदस् शब्द से परे अकच् प्रत्यय होकर अदकस् बना। तथा अदसोऽसेर्दा दुदोमः सूत्र से मुत्व होकर अम पकस बना। अब प्रथमा के बहुवचन विवक्षा में जस प्रत्यय तथा जस् के स्थान में जसः शी सूत्र द्वारा शी आदेश होकर अदकस्+शी बना। झकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर तथा त्यदाद्यत्व पररुप एवं आद् गुणः णे गुण होकर अम पके प्रयोग सिद्ध होता है। अब इसके आगे अत्र पर लाने से एङः पदान्तादति सूत्र द्वारा पूर्व रुप करने पर अमुकेऽत्र प्रयोग सिद्ध होता है। यदि सूत्र में मात ग्रहण न करते तो यहाँ ककार से परे भी प्रगृहय संज्ञा होकर प्रकृति भाव हो जाता। इससे एङ पदान्तादति की प्रवृति नहीं होती। इसलिये मात ग्रहण किया गया है।

इस सूत्र का उदाहरण तथा विग्रह एवं सन्धि करे -

विग्रह-	आदेश	सन्धि
अमी ईशाः	अमा ईशाः	अमी+ईशाः
अमी+अश्नन्ति	अमी+अश्नन्ति	अमी+अश्नन्ति

इन सूत्रो का उदाहरण प्रायः कम प्राप्त होता है। निपात की भी प्रगृहय संज्ञा होती है निपात विधायक सूत्र लिखते है-

निपात संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

53 चादयो ऽसत्वे 1/4/57//

अद्र व्यर्थाश्चादयो निपाताः स्यु

अर्थ- द्रव्य अर्थ न होने पर च आदि की निपात संज्ञा होती है। यै: लिंङ संख्यान्वयित्वं द्रव्यत्वं जिस शब्द में लिंग और संख्या का अन्वय अर्थात् संबन्ध हो अथवा जिस शब्द में लिंग संख्या हो उसे द्रव्य कहते है। और उससे भिन्न अद्रव्य है जैसे- च, वा, हि, आ, ये शब्द लिंग संख्या से रहित है। अतः ये अद्रव्य है और पश ,मनुष्य, वन आदि द्रव्य है। यह सूत्र से चादि गण में पठित शब्द की निपात संज्ञा होती है। यदि उसमें द्रव्य वाचकता न होतो। निपात संज्ञा के अनेक फल होते है। उन में से एक फल प्रगृहय संज्ञा भी है।

निपात संज्ञा विधायक सूत्र

54 . प्रादयः 1/4/58// एतेऽपि तथा

अर्थ- द्रव्य अर्थ न होने पर प्र आदि की निपात संज्ञा होती है। द्रव्य अर्थ में प्रादियो की निपात संज्ञा नहीं होती जिस प्रकार प्रादि गण में वि शब्द पढ़ा गया है यदि उसका अर्थ पक्षी होगा तो वह द्रव्य वाचक होगा। द्रव्य वाचक होने से उसकी निपात संज्ञा नहीं। होगी निपात न होने से यह अव्यय भी नहीं होगा और अव्यय न होने से सुप् का लुक् भी नहीं होगा। विः, पक्षी, विं, पश्य, इत्यादि। जिसकी निपात संज्ञा होती है। उनकी प्रगृहय संज्ञा और प्रकृति भाव होता है।

प्रगृह्य संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

55 . निपात एकाजनाङ 1/1/14// एकोऽज निपात आङ् वर्जः प्रगृह्य स्यात।

इ इन्द्रः। उमेशः। वाक्यस्मरणयोरिङित्। आ एवं नु मन्यसे। आ एवं किल तत्। अन्यत्र ङित्

आ इषदुष्णम् ओष्णम्।

अर्थ- आङ् शब्द को छोड़कर मात्र एक अच् वाला निपात प्रगृह्य संज्ञक होता है। जिसकी पहले निपात् संज्ञा हो चुकी है, और उसमें मात्र केवल एक ही अच् हो, और वह एक अच् भी आङ् वाला न होतो उसकी इस सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हे जाती है। अनाङ् अर्थात् आङ् को छोड़कर। ऐसा इस लिये कहा गया है कि आङ् में ड.कार की इत्संज्ञा तथा तस्यः लोपः से लोप हो जाने के बाद आ मात्र वचता है। उसकी निपात संज्ञा न हो सके। क्योंकि आङ् को छोड़कर सभी एकाच निपात प्रगृह्य संज्ञक होते है।

उदाहरण- इ इन्द्रः यहाँ पर अद्रव्यार्थ वाचक चादि गण में इ पढा गया है। अतः उसकी चादयोऽसत्वे सूत्र से निपात संज्ञा हो गयी। और निपात एकाजनाङ् सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हो गयी। प्रगृहय संज्ञा होने के बाद प्लुत प्रगृह्याचि नित्यम् सूत्र से प्रकृति भाव होकर इ + इन्द्रः ज्यौ का त्यौ रहा अर्थात् उसमे कोई परिवर्तन नही हुआ। यदि निपात संज्ञा नहीं होता तो अकःसवर्णे दीर्घ: से सवर्णे दीर्घः होकर ईन्द्रः ऐसा अनिष्ट रुप बनने लगता। इसी प्रकार अगला उदाहरण भी देखें-

उ उमेशः - यहाँ पर अद्रव्यार्थ वाचक चादि गण में पठित शब्द है उ का उकार उस उकार की चादयोऽसत्वे इस सूत्र से निपात संज्ञा हो गयी। निपात संज्ञा होने के बाद निपात एकाजनाङ् इस सूत्र से उकार की प्रगृह् संज्ञा हो गयी। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद प्लुत् प्रगृह्य अचि नित्यम् इस सूत्र से प्रकृति भाव होकर उ उमेशः ज्यौ का त्यौ बना रहा। अतः इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यदि इसकी निपात संज्ञा नहीं होती तो अकः सवर्णे दीर्घ सूत्र से सवर्ण दीर्घः होकर ऊमेशः ऐसा अनिष्ट रुप बनने लगता।

वाक्यस्मरणयोरङित। अन्यत्र ङित्। वाक्य और स्मरण अर्थ में आ अङित होता है। चादि गण में आ पढ़ा गया तथा प्रादि गण में आङ् पढ़ा गया है। इन दोनों को चादयो ऽसत्वे तथा प्रादयः से निपात संज्ञा होती है इस प्रकार से दो निपात माने गये है। इनमें प्रथम् आ की निपात एकाजनाङ् से प्रगृह्य संज्ञा होती है। किन्तु सूत्र में अनाङ् कहा गया है अर्थात आङ् की प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती है। अब यहाँ पर समस्या यह उत्पन्न होती है कि आङ में ङकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर आ ही बचता है। ऐसी स्थिति में प्रश्न उत्पन्न होता है यह आ चादि गण वाला है। कि प्रादि गण वाला आ। किस जगह अङित आ को माने और किस जगह ङित आ को। इस समस्या के समाधान के लिये सूत्र में लिखा है कि वाक्य स्मरणयोरङित्। अन्यत्र ङित् वाक्य और स्मरण अर्थ में आ को ङित् माना जाय अर्थात चादि गण वाला आ माना जाय और अन्यत्र अङित् माना जाय अर्थात प्रादि गण वाला आङ् माना जाय। इसके उत्तर में भाग्यकार ने स्वयं व्यवस्था दी है।

इषदर्थे क्रिया योगे मर्यादाऽ भिविधौ चयः।
एतमातं ङित विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित्

अर्थात् इषद्= अल्प अर्थ में, क्रिया योगे = क्रिया के साथ योग होने पर, मर्यादा भिविधौ च मर्यादा और अभिविधि अर्थ में अङित् = अर्थात आ मानना चाहिये और अङित् आ कि प्रगृह्य

संज्ञा होती है। और ङित् की नहीं होती है। आ एवं नु मन्यसे। (अब तुम ऐसा मानते हो)। यह वाक्य अर्थ में है तथा आ एवं किल तत् हा पर ऐसा ही है। स्मरण अर्थ में आ अङित माना जाये अर्थात चादि गण वाला आ माना जाये। अ ङित अर्थात चादि आ की प्रगृहय संज्ञा होती है। ङित् की प्रगृहय संज्ञा नहीं होती है। इसलिये आ यहाँ पर अङित माना गया है। इसलिये आ की निपात एकाजनाङ इस सूत्र में प्रगृह्य संज्ञा होकर प्लुत प्रगृहया अचि नित्यम् से प्रकृति भाव होकर आ एवं यहाँ पर वृद्धि रेचि से सूत्र से वृद्धि प्राप्त थी। उसको बाधकर प्रकृति भाव हो गया अर्थात उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आ एवं नु मन्यसे तथा आ एवं किल तत् ज्यौ का त्यौ बना रहा। इन दोनों अर्थो से जहा पर भिन्न अर्थ होगा वहा पर प्रकृति भाव नहीं होगा। इषद् आदि अर्थो में ङित होने के कारण प्रगृहय संज्ञा नहीं हुई। तो प्रकृति भाव भी नहीं हुआ। अतः आ का उषाम के उकार के साथ है। अर्थात आ+ उष्णम्। इस अवस्था में आद गुणः सूत्र से गुण होकर आ उ = ओ बना। वर्ण सम्मेलन होकर ओष्णम् प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार इसका अन्य उदाहरण भी देखें-

प्रगृह्य संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

56 ओत् 1/1/15//

ओदन्तो निपात् प्रगृह्यः स्यात्। अहो ईशाः।

विग्रह	आदेश	सन्धि
अहो+आश्चर्यम्	अहो+आश्चर्यम्	अहो आश्चर्यम्
अथो+इति	अथो+इति	अथो इति
उताहो+असत्यम्	उताहो+असत्यम्	उताहो असत्यम्

अर्थ- ओकार अन्त वाला निपात प्रगृह्य संज्ञक होता है।

अहो ईशाः अहो + ईशाः यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अवादेश प्राप्त है। उस अवादेश को बाधकर सूत्र लगा इस चादयोऽसत्वे सूत्र से अहो की निपात संज्ञा हुई। निपात संज्ञा होने के बाद सूत्र लगा- ओत् सूत्र लगा यह सूत्र कहता है कि ओकर अन्त वाला निपात प्रगृहय संज्ञक होता है , वह निपात है। यहाँ पर अहो में जो ओकार है। वह नियात है। ओकारान्त निपात होने से प्रगृह्य संज्ञा हुई। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद प्लुत प्रगृहया अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृति भाव होता है। अर्थात अहो+ईशाः में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अहो ईशाः ज्यों का त्यों रहा।

इसी प्रकार अथो, नो, आहो, उताहो आदि अन्य उदाहरण भी समझ लेना चाहिये।

ध्यान रहे कि यहाँ पर एक अच् रुप निपात न होने से पूर्व सूत्र द्वारा प्रगुहय संज्ञा नहीं हो सकती है। अतः इस लिये अगला सूत्र अनाया गया।

57. सम्बुद्वौ शाकल्यस्येतावनार्षे 1/1/16//

सम्बुद्दि-निमित्तक ओकारो वा प्रगृह्यो ऽवैदिके इतौ परे विष्णो इति। विष्ण- इति। विष्ण विति।

अर्थ-सम्बुद्धि निमितक ओकार से अवेदिक अर्थात वेद में न पाये जाने वाले इति शब्द के परे होने पर विकल्प करके प्रगृहय संज्ञा होती है। उदाहरण यथा -

विष्णो इति- विष्णो + इति (यहाँ पर विष्णो शब्द सम्बोधन एक वचन का रुप है।) यहाँ पर

एचोऽयवायावः सूत्र से विष्णो में ओ के स्थान पर अव् आदेश प्राप्त है उस अवादेश को बाधकर सूत्र लगा । सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे । यह सूत्र कहता है कि सम्बुद्वि निमित्तक ओकर से अवैदिक इति शब्द परे होने पर ओकार की प्रगृहय संज्ञा होती है । विकल्प से ।

यहाँ पर सम्बुद्वि का ओकार है विष्णो में ओ तथा पर में अवैदिक इति शब्द पर है इति। इसलिये ओकार की प्रगृह्य संज्ञा होकर प्लुत् प्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृति भाव होकर विष्णों इति ज्यौ का त्यौ रहा । अर्थात इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ । किन्तु प्रगृहय संज्ञा विकल्प से होता है। जिस पक्ष में प्रगृहय संज्ञा नहीं होगी उस पक्ष में प्रकृति भाव भी नहीं होगा । अब यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश होकर विष्ण्+अव्+इति बना। णकार में अकार मिलकर विष्णव इति बना । अव् यहाँ पर पदान्त वकार मानकर लोपः शाकल्यस्य सूत्र से विकल्प से व का लोप होकर विष्ण इति सिद्ध होता है (यहाँ पर आद् गुणः सूत्र से गुण नहीं होता पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र में निर्णय किया गया है ।) किन्तु वकार का लोप विकल्प से होता है जिस पक्ष में वकार का लोप नहीं होगा उस पक्ष में विष्णव् इति बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णव विति रुप सिद्ध होता है। इस प्रकार तीन रुप बना - प्रकृति भाव पक्ष में विष्णो इति। अवादेश तथा व का लोप पक्ष में विष्ण इति। व का लोप नहीं होगा उस पक्ष में विष्ण विति। इस प्रकार अन्य उदाहरण भी देखिये।

विग्रह	आदेश	सन्धि
विष्णो इति	विष्णो इति	विष्णो इति
शम्भो इति	शम्भो इति	शम्भो इति
यानो इति	यानो इति	यानो इति

वकारादेश विधायक विधि सूत्रम्

58. मय उमो वो वा 8/3/33//

मयः परस्य उमो ञो वो वा स्यादचि ।

किम्वुक्तम् । किमु उक्तम् ।।

अर्थ- मय् प्रत्याहार से परे उ´ निपात को विकल्प करके व आदेश हो जाता है। अच् परे हो तो । यह सूत्र प्रकृतिभाव को बाधकर वकरादेश करने के लिये प्रवृत हुआ है । आदेश न होने के पक्ष में प्रकृतिभाव ही होगा । उ´ में उ ´कार की इत्संज्ञा हो जाने के बाद मात्र ही बचता है ।

किम्वुक्तम् किमु उक्तम् किम् + उ´ बना । ´मकार की हलन्त्य सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर किम् + उ बना । वर्ण सम्मेलन होकर किमु + उक्तम् बना । यहाँ पर उ´ का जो उकार है । वह निपात गण में पढ़ा गया है। निपात गण में पढ़े जाने के कारण निपात एकाजनाङ सूत्र से उ की प्रगृह्य संज्ञा होता है । प्रगृहय संज्ञा होने के बाद प्रकृति भाव प्राप्त था। उस प्रकृति भाव को बाधकर के मय उ वो वा सूत्र लगा । यह सूत्र कहता है कि मय् प्रत्याहार से परे उकार के स्थान पर 'व' आदेश होता है । विकल्प से। यहाँ पर मय् प्रत्याहार का वर्ण है । किम् का मकार उस मकार से परे उ्´ का उकार उस उकार के स्थान पर विकल्प से व आदेश होकर किम् + व् + उक्तम् बना । वर्ण सम्मेलन होकर किम्वुक्तम् प्रयोग सिद्ध होता है । वकार आदेश विकल्प से होता है जिस पक्ष में वकार आदेश नहीं होगा, उस पक्ष प्रकृति भाव होकर किमु उक्तम् ज्यौ का

त्यौ रहा। ह्रस्व समुच्चित प्रकृति भाव विधायक विधि सूत्र

59 इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च 6/01/127//

पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि। ह्रस्वविधान सामर्थ्यान्न स्वर संन्धि। चकि अत्र। चक्रयत्र पदान्ता किं गौर्यौ।

अर्थ- असवर्ण अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पदान्त इक् को ह्रस्व होता है। विकल्प से चक्रि अत्र, चक्रयत्र चक्री+अत्र यहाँ पर इकोयणचि सूत्र से यण् प्राप्त था उस यण् को बाधकर सूत्र लगा। इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है कि पदान्त इक् को ह्रस्व होता है असवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो (सवर्णी असवर्णी स्वर के बारे में दीर्घ सन्धि में विशेष प्रकार से बताया गया है।) यहाँ पर पदान्त इक् प्रत्याहार का वर्ण है चक्री में ई तथा पर में असवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण है अत्र का अकार। इस लिये चक्री में जो दीर्घ ईकार है। उसको ह्रस्व होकर चक्रि+अत्र प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर ह्रस्व होने के बाद भी इकोयणचि सूत्र से यण् होना चाहिये किन्तु सूत्र में कहा गया है कि ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वर संन्धिः अर्थात ह्रस्व विधान करने के सामर्थ्य से स्वर सन्धि नहीं होती है। यहाँ पर एक बार ह्रस्व विधान कर दिया गया है इसलिये इको यणचि सूत्र से यण् नहीं होगा। चक्रि अत्र ऐसा ही रहेगा। किन्तु ह्रस्व विकल्प से होता है। जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होगा उस पक्ष में यण् होकर चक्र्य्+अत्र बना। वर्ण सम्मेलन न होकर चक्रयत्र प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार दो रुप बना। ह्रस्व पक्ष में चक्रि अत्र ह्रस्व नहीं होगा तो चक्रयत्र प्रयोग सिद्ध होता है।

पदान्ताः इति किम् गौर्यौ। सूत्र में कहा गया है कि पदान्त इक् को ही ह्रस्व हो। पदान्त इक् नहीं होगा तो ह्रस्व नहीं होगा, ऐसा क्यों कहा गया? पदान्त इक् इसलिये कहा गया कि गौरी+औ यहाँ पर प्रकृति है गौरी और प्रत्यय है औ। जब तक प्रकृति प्रत्यय नहीं मिलता तब तक पदान्त नहीं बनता यदि पदान्त नहीं कहा गया तो गौरि+औ में ह्रस्व होकर गौरी औ ऐसा अनिष्ठ प्रयोग न बन जाये इसलिये यहाँ पर पदान्त ग्रहण किया गया। इसके बाद इ को यणचि सूत्र से यण् होकर गौर्यौ प्रथमा विभक्ति में बनता है।

इस सूत्र का अन्य उदाहरण -

विग्रह	आदेश	संन्धि
चक्री+अत्र	चक्रि+अत्र	चक्रि अत्र
योगी+आगच्छति	योगि+आगच्छति	योगि आगच्छति
कुमारी+अत्र	कुमारि+अत्र	कुमारि अत्र
वारि+अत्र	वारि+अत्र	वारि अत्र

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखना चाहिये।

वैकल्पिक द्वित्व विधायक विधि सूत्र

60 . अचोरहाभ्यां द्वे 8/4/46//अचः पराम्यां रेफ हकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वास्तः गौर्यौ।

अर्थ- अच् प्रत्याहार से परे जो रेफ और हकार उस रेफ और हकार से परे जो यकार है उसको विकल्प से द्वित्व होता है।

गौर्यौः - पूर्व सूत्र में गौर्यौ बताया गया है। उसमें आगे की विधि को बता रहे है। गौरी+औ इस स्थिति में इको यणचि सूत्र से यण् होने के बाद गौर् य्+औ बना। उसके बाद सूत्र लगा- अचोरहाभ्यां द्वे। यह सूत्र कहता है कि अच् प्रत्याहार से परे रेफ और हकार, और उस रेफ और हकार से परे यर् प्रत्याहार के वर्ण को द्वित्व होता है। यहाँ पर गौर् य्+औ में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। ग् में औ इससे परे रेफ है र् इस रकार से परे यर् प्रत्याहार का वर्ण है यकार, उसको विकल्प से द्वित्व होता है। यहाँ पर य् को द्वित्व होकर गौर् य्+ औ बना। र् को उर्ध्व गमन तथा यकार में और मिलकर गौयर्यौ प्रयोग सिद्ध होता है। द्वित्व विकल्प से होता है जिस पक्ष में द्वित्व नहीं होगा उस पक्ष में गौर्यौ प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार दो रूप बना गार्यौ, गोर्यौ।

इस सूत्र के कुछ अन्य उदाहरण-

दित्वाभाव

विग्रह	आदेश	सन्धि
अर्+कः	अर्कः	अर्क्कः अर्क्कः
कार्+यम्	कार्यम	कार्+य्+य़ कार् य्यम्

वार्तिक ९ न समासे वाप्यश्वः

समास में असवर्ण अच् प्रत्याहार का वर्ण परे होने पर पदान्त इक को ह्रस्व नहीं होता है।

वापी$अश्वः (तालाब में घोडा)

वापप्यामश्वः लौकिक विग्रह हुआ । वापी +ङि+अश्व सु, अलौकिक विग्रह हुआ । सप्तमी तत्पुरूष समास होकर विभक्ति का लुक् करके वापी+अश्व बना। अब यहाँ पर इको'ऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च इस सूत्र से वापी में पी में जो इकार है उसको ह्रस्व होना चाहिए । किन्तु न समासे वाण्यश्वः इस वार्तिक के द्वारा ह्रस्व विधान को निषेध होकर वापी+अश्वः ऐसा ही रहा। अब इको यणचि सूत्र से यण् आदेश होकर वाप्य्+अश्वः बनता है । उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर वाण्यस्वः प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए।

ह्रस्व समुचित प्रकृति भाव विधायक विधि सूत्र

61 .ऋत्यकः 6/1/128//

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद् वा । ब्रह्म+ऋषिः। ब्रह्मर्षि। पदान्ताःकिम्? आर्च्छत्।

अर्थः- ह्रस्व ऋकार के परे होने पर पदान्त अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है । ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः। ब्रह्म , ऋषिः यहाँ पर आद् गुणः सूत्र से गुण प्राप्त था । उस गुण को बाधकर सूत्र लगा ऋत्यकः। यह सूत्र कहता है कि ह्रस्व ऋकार परे होनें पर अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है । यहाँ पर ह्रस्व ऋकार पदान्त पर में है । ऋषि का ऋकार, उससे पूर्व में पदान्त अक् प्रत्याहार का वर्ण है । ब्रहमा का आकार उस आकार को विकल्प से ह्रस्व होकर ब्रह्मर्षि: प्रयोग सिद्ध होता है । ह्रस्व विकल्प से होता है जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होगा उस पक्ष में आद् गुणः से गुण होकर ब्रह्म+ अर् +षिः बना । उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर ब्रह्मर्षि: प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार दो रूप बनते है । 1 - व्रह्म ऋषिः तथा 2- ब्रह्मर्षि:

पदान्ता किम् किम आर्च्छत् । यहाँ पर प्रश्न करते है कि ऋत्यकः सूत्र में पदान्ताः नहीं पढ़ा गया

होता तो क्या हानी होती ? उत्तर दिया आर्च्छतः प्रयोग की सिद्वि नहीं हो पाती। यथा-आ-ऋच्छत् यहाँ पर ऋच्छ धातु लङ् लकार प्रथम पुरुष एक वचन का रुप है। 'आ' यह यहाँ पर आट् का आगम हुआ है। इसलिए यह जो आ है। वह अपदान्त है। अपरान्त होने से ऋकार पर में होने के बाद भी ह्रस्व नहीं होगा। आटश्च सूत्र से में पूर्व में 'आ' तथा पर में ऋ दोनों के स्थान पर वृद्धि होकर आर्च्छत प्रयोग सिद्ध होता है। अतः इस सूत्र में पदान्त का ग्रहण नहीं किया गया होता तो अ ऋच्छत् ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। इसलिए पदान्त का ग्रहण किया गया। इसी प्रकार अन्य उदाहरण देखिये -

विग्रह	आदेश	सन्धि	ह्रस्वाभाव
कुमारी + ऋतुमती	कुमार् + इ+ ऋतुमती	कुमारि ऋतुमती	कुमार्यृ तुमती
कन्या + ऋज्वी	कन्य् + अ+ ऋज्वी	कन्य ऋज्वी	कर्न्यज्वीं
महा + ऋषि	मह् + अ + ऋषि	मह ऋषि	महर्षि

इस प्रकार सन्धि प्रकरण सम्पूर्ण हुआ।

अभ्यास प्रश्न

1. गो अग्रम किस सूत्र का उदाहरण है?
2. प्लुत किसे कहते है?
3. हरी एतौ में कौन सा सूत्र लगा है?
4. अदस् शब्द के मकार से परे इत् ऊत् की क्या होती है?
5. चादियों का द्रव्य अर्थ न हो तो उनकी क्या होती है?
6. आङ् को छोड़कर एक मात्र की क्या होती है?
7. ओकार अन्तवाला निपात की क्या होती है?
8. चक्रि अत्र में यहाँ पर पदान्त इक् है?
9. असवर्ण अच् के परे होने पर पदान्त इक् को क्या होता है ?
10. ह्रस्वं विधान सामर्थ्य से कौनसी सन्धि नहीं होती है?
11. चक्रिअत्र यह किस सूत्र का उदाहरण है?
12. गौरी + औ में यहां पर इकोऽसवर्णे से ह्रस्वं क्यों नहीं हुआ?
13. अच से परे रेफ और हकार ओर उस के रेफ और ह से परे यर को क्या होता है?
14.असवर्ण अच् परे होने पर पदान्त इक् को ह्रस्वं नहीं होता है कहां पर?
15. ऋकार परे होने पर पदान्त अक् को विकल्प से क्या होता है ?

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. गो + अग्रम में सन्धि हुई:-

(क) गुण (ख) दीर्घ (ग) प्रकृतिभाव (घ) अयादि

2. प्लुत और प्रगृह्यसंज्ञक अच् परे होने पर होता है:-

(क) प्रकृतिभाव (ख) पररूप (ग) पूर्वरूप (घ) गुण

3. इदन्त उदन्त द्विवचन की होती है:-

(क) प्रगृह्य संज्ञा (ख) प्लुत संज्ञा (ग) ह्रस्वं संज्ञा (घ) दीर्घ संज्ञा

4. ब्रह्म ऋषिः किस सूत्र का उदाहरण है:-

(क) आदगुणः (ख) अकः सवर्णेदीर्घः (ग) ऋत्यकः (घ) अनचि च

6. 4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप प्रकृतिभाव सन्धि के विषय में जान गये होंगे। प्रकृतिभाव सन्धि के मुख्य सूत्र है - सर्वत्रविभाषा गोः, प्लुत-प्रगृह्याचिनित्यम्, इदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्, निपात एकाजनाङ, ओत्-आदि । इस इकाई में अनेक सूत्रों का सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है। प्रकृतिभाव सन्धि अच् सन्धि के अन्तर्गत है । इसमें जहाँ प्लुत और प्रगृह्य संज्ञक शब्द होंगे वहां पर प्रकृतिभाव सन्धि होती है। आङ् शब्द को छोड़कर मात्र एक अच् वाला निपात प्रगृह्य संज्ञक होता है । जिसकी पहले निपात् संज्ञा हो चुकी है, और उसमें मात्र केवल एक ही अच् हो, और वह एक अच् भी आङ् वाला न होतो उसकी इस सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हे जाती है । अनाङ् अर्थात् आङ् को छोड़कर । ऐसा इस लिये कहा गया है कि आङ् में ड.कार की इत्संज्ञा तथा तस्यः लोपः से लोप हो जाने के बाद आ मात्र वचता है । उसकी निपात संज्ञा न हो सके । क्योंकि आङ् को छोड़कर सभी एकाच निपात प्रगृह्य संज्ञक होते है । ह्रस्व ऋकार के परे होने पर पदान्त अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है । ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः। ब्रह्म , ऋषिः यहाँ पर आद् गुणः सूत्र से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर सूत्र लगा ऋत्यकः। यह सूत्र कहता है कि ह्रस्व ऋकार परे होनें पर अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है । यहाँ पर ह्रस्व ऋकार पदान्त पर में है। ऋषि का ऋकार, उससे पूर्व में पदान्त अक् प्रत्याहार का वर्ण है । ब्रहमा का आकार उस आकार को विकल्प से ह्रस्व होकर ब्रह्मर्षि: प्रयोग सिद्ध होता है । ह्रस्व विकल्प से होता है जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होगा उस पक्ष में आद् गुणः से गुण होकर ब्रह्म+अर्+षिः बना । उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर ब्रह्मर्षि: प्रयोग सिद्ध होता है ।

6.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
गो अग्रम्	गाय का अग्र भाग
गौः	गाय का
गवेन्द्रः	सांड़ बड़ा बैल
हरी एतौ	ये दोनों हरि, घोड़े बन्दर है
विष्णू इमौ	ये दोनों विष्णु हैं
अमी ईशाः	ये दोनों स्वामी हैं
रामकृष्णावमू आसाते	राम कृष्ण दोनों बैठे हैं
इ इन्द्रः	यह इन्द्र है
उ उमेशः	यह शिव है
आ एवं नु मन्यसे	तुम ऐसा मानते हो

आ एवं किल तत्	हाँ यह ऐसा ही था
ओष्णम्	कुछ गरम, कुछ ठण्डा
अहो ईशाः	अहो ये स्वामी है
किम्वुक्तम्	क्या कहा
चक्रि अत्र	विष्णु यहाँ है
वाप्यश्वः	बावड़ी में घोड़ा

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.सर्वत्र विभाषा गोः
2. त्रिमात्रिक को प्लुत कहते हैं
3. (इदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्)
4. प्रगृह्य संज्ञा
5. (निपात संज्ञा)
6. (प्रगृह्य संज्ञा)
7. (प्रगृह्य संज्ञा)
8. (क्रि मे इ)
9. (ह्रस्व)
10.(स्वर सन्धि)
11.(इकोऽसवर्णेकल्यस्य ह्रस्वश्च)
12. (पदान्त न होने से)
13. (द्वित्व)
14. (समास में)
15.(ह्रस्व)

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. (ग)
2. (क)
3. (क)
4. (ग)

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी
2. सिद्धान्तकौमुदी

6.8 उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी.- श्रीधरानन्दशास्त्री

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एतन्मुरारिः प्रयोग को सूत्र सहित सिद्ध कीजिए।
2.सर्वत्र विभाषा गो: सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. निपात संज्ञा को उदाहरण सहित समझाएं।
4. प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के आधार पर तीन प्रयोगों की सिद्धि का अभ्यास कीजिए।